कणिका में प्राउट

तृतीय और चतुर्थ खण्ड

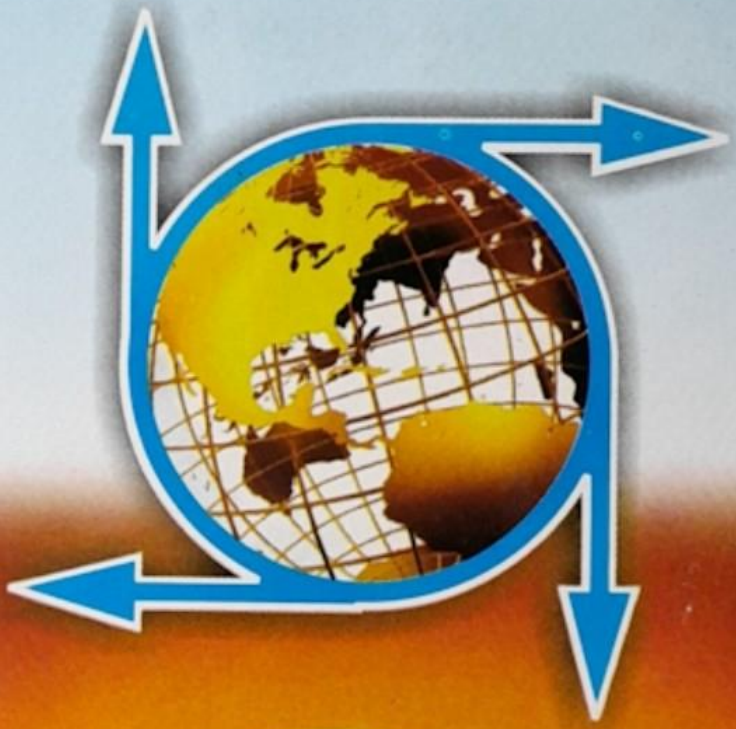

श्री प्रभातरञ्जन सरकार

कणिका में प्राउट

(तृतीय और चतुर्थ खण्ड)

श्री प्रभातरञ्जन सरकार

सूचीपत्र

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ (केन्द्रीय कार्यालय) द्वारा सर्वस्वत्व संरक्षित

रजिस्टर्ड ऑफिस :

आनन्दनगर, पोस्ट- बागलता जिला - पुरुलिया, पश्चिम बंगाल

संस्करण 2009

प्रकाशक :

आचार्य सम्पूर्णानन्द अवधूत

(केन्द्रीय प्रकाशन सचिव) आनन्द मार्ग प्रचारक संघ, आनन्द नगर, (पश्चिम बंगाल)

मुद्राक :

सूचीपत्र

आनन्द प्रिंटिंग प्रेस 20बी/12बी, म्योर रोड, इलाहाबाद-211002 फोन : 0532-2548653

प्राप्ति स्थान

आनन्द मार्ग प्रचारक संघ

आनन्द नगर, बागलता, पुरुलिया, (पश्चिम बंगाल)

आनन्द मार्ग प्रचारक संघ

हेहल, रातू रोड, राँची – 5

सूचीपत्र

रोमन संस्कृत वर्णमाला

विभिन्न भाषाओं का ठीक - ठीक उच्चारण करने के लिए तथा द्रुतलेखन के प्रयोजन को समझकर निम्नलिखित पद्धति से रोमन संस्कृत वर्णमाला का प्रवर्त्तन किया गया है

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
অ	আ	ই	ঈ	উ	ঊ	ঋ	ৠ	ঌ	ৡ	এ	ঐ	ও	ঔ	অং	অঃ
a	á	i	ii	u	ú	r	rr	lr	lrr	e	ae	o	ao	am	ah

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ক	খ	গ	ঘ	ঙ	চ	ছ	জ	ঝ	ঞ
ka	kha	ga	gha	uṇa	ca	cha	ja	jha	iṇa

ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
ট	ঠ	ড	ঢ	ণ	ত	থ	দ	ধ	ন
́ta	́tha	́da	́dha	ń́a	ta	tha	da	dha	na

सूचीपत्र

प फ ब भ म

প ফ ৰ ভ ম

Pa pha ba bha ma

य र ल व

য ৰ ল ব

ya ra la va

श ष स ह क्ष

শ ষ স হ ক্ষ

sha śa sa ha kśa

अँ ज्ञ ऋषि छाया ज्ञान संस्कृत ततोऽहं

অঁ জ্ঞ ঋষি ছায়া জ্ঞান সংস্কৃত ততোঽহং

aṇ jiṇa ṛśi cháya jiṇána saṁskrta tato’haṁ

a á b c d ḍ́ e g h i j k l m ḿ n ṅ́ ṇ o p r s ś t ṭ́ u ú v y

समग्र विश्व में बहुत प्रचारित रोमन लिपि के २ ९ अक्षर मात्र से संस्कृत भाषा का ठीक - ठीक उच्चारण किया जाना सम्भव है । इसमें युक्ताक्षर का भी झमेला नहीं है । अरबी , फारसी और अन्यान्य f, q , gh , z , प्रभुति अक्षरों का प्रयोजन रहता है , संस्कृत में नहीं । शब्द के मध्य या शेष में ' ड ' , ' ढ ' यथाक्रम ' ड़ ' और ' ढ़ ' ' रूप में उच्चारित होते हैं । ' य ' (जहाँ ' य ' का उच्चारण ' इ ' , ' अ ' होता है) के समान वे भी कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं हैं । प्रयोजन के अनुसार और असंस्कृत शब्द लिखने के समय ŕa और ŕha व्यवहार किया जा सकता है ।

गैर- संस्कृत शब्द लिखने के लिए दिए गए दश अतिरिक्त अक्षर

क़ ख़ ज़ ड़ ढ़ फ़ य़ ऩ ৎ অঁ

सूचीपत्र

क़	ख़	ज़	ड़	ढ़	फ़	य़	ऌ	त्	अँ
qua	qhua	za	ŕ	ŕha	fa	ya	lra	t	aṉ

सूचीपत्र

सूचीपत्र

खण्ड-3

आज की समस्याएँ

विभिन्न मतवाद

समाज चक्र में सद्वित्र का स्थान

विश्व भ्रातृत्व

खण्ड-4

प्राउट के ऊपर कई एक प्रवचन

प्राउट की मूल नीति

देशभक्तों के प्रति

समाज का गति तत्त्व

आजकीसमस्याएँ

अतिरिक्त विषय सूची

आध्यात्मिकसाधना

आर्यसमाज

कठोर श्रृंखलाविश्वभ्रातृत्व

शङ्करदर्शन

शांकरदर्शनकी त्रुटि
शान्ति
समाजकागतितत्त्व
समाजचक्रमे
समाजचक्रमेंसद्विप्रकास्थान
सामाजिकनिरापत्ता
सामाजिकमनस्तत्व
सामूहिकसामाजिक अनुष्ठान
सुविचार
कुसंस्कारकेविरुद्धसंग्राम
चरमदण्डसंहिता
चार्वाक
जातिभेदविहीनसमाजव्यवस्था
देशभक्तोंकेप्रति
पातञ्जलऔरसांख्य
मार्क्सवाद

“आज की समस्याएँ”

इस नाम से एक अलग पुस्तक है, इसलिए यह लेख यहां शामिल नहीं है।

यह पुस्तक आपको निम्नलिखित वेबसाईट पर मिलेगी

www.anandamargaideas.com

सूचीपत्र

विभिन्न मतवाद

वर्तमान पृथ्वी पर कई महत्वपूर्ण मतवाद प्रकाशित हुए हैं। वे सब हैं- बौद्धमतवाद, शाङ्कर मतवाद, पातञ्जल दर्शन, सांख्य दर्शन, आर्य समाज, मार्कसवाद, यहूदी मतवाद, खृष्टीय मतवाद तथा इस्लाम मतवाद।

इन मतवादों में पारस्परिक सादृश्य है। मौलिक नीति और विश्वास की दिशा से निम्नलिखित श्रेणी में विभक्त कर आलोचना की जाय-

(1) बौद्ध तथा शाङ्कर मतवाद।

(2) पातञ्जल तथा सांख्य मतवाद।

(3) आर्य समाज।

(4) मार्क्सवाद।

यहूदी मतवाद, सृष्टीय तथा इस्लाम मतवाद ये तीन सेमितिय मतवाद हैं।

बौद्ध तथा शाङ्कर मतवाद-

आस्तिकवादी सभी भारतीय दर्शन, बिना किसी वितर्क के यह बात स्वीकार कर लेते हैं कि आत्मा एक अविच्छिन्न ज्ञान-प्रवाह है। पालि धर्म शास्त्र में इसे विज्ञान कहा गया है। बोला गया है-ज्ञान है एक अविच्छिन्न प्रवाह। जागतिक प्रत्येक वस्तु का निजी प्रवाह, तरठ या एक प्रकार की गतिशील शक्ति है। **भारतीय योग दर्शन के मत से परमात्मा अनन्त ज्ञान प्रवाह है।**

"एकम् ज्ञानम् नित्यामाद्यन्त शून्यम् नान्यत किञ्चित वर्त्तते वस्तुसत्य् तयो वेदोऽस्मिन् इन्द्रियोपाधिना वै ज्ञानस्यायम् भासते नान्यथैव।।"

(शिव संहिता)

भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' शब्द का व्यवहार नहीं किया। इस कारण से उनकी मृत्यु के बाद बौद्ध भिक्षुओं के मध्य दार्शनिक मतभेद देखा गया। बुद्ध के अन्तर्ध्यान के बाद वैशाली, पुष्पपुर तथा पाटलिपुत्र में एक के बाद दूसरी तीन धर्म सभाएँ आयोजित हुई। उद्देश्य था बौद्ध शास्त्र त्रिपिटक को संकलित करना। इन धर्म-सभाओं में, पालि भाषा में, त्रिपिटक को, निम्नलिखित तीन अध्यायों में विन्यस्तकर, संकलन किया गया। ये तीन हुये-

(1) विनयपिटक (बौद्ध धर्म का व्यावहारिक पक्ष)

(2) सुत्तपिटक (सैद्धांतिक दिशा)

(3) अभिधम्मपिटक (दार्शनिक दिशा)

ये तीन पिटक मिलकर हुआ-बौद्ध-धर्म-शास्त्र। वे सभी बौद्ध भिक्षु जिन्होंने रुढ़िवाद संन्यास मार्ग को मान लिया था, वे त्रिपिटक के वहिर्भूत और कुछ भी मानने को राजी नहीं हुये। इन्हें कहा गया-स्थविरवादी या भेरवादी (Southern School of Buddhistic cult) और जो न्याय-दशर्न द्वारा प्रभावित हुये, उन्हें कहा गया-महासङ्घिक।

पालि शब्द 'पल्ली' शब्द से आया है जिसका अर्थ है ग्राम्य, अशिष्ट, स्थूल। भगवान बुद्ध ग्राम की प्रचलित कथ्य भाषा में, धर्मदेशना देते थे। किन्तु हिन्दू पण्डित लोग स्वाभाविक उन्नासिकतावश इसको 'भाषा' न बोलकर 'भाखा' बोलकर अभिहित करते थे। साधारण प्राकृतजन, संस्कृत नहीं समझते थे। क्योंकि संस्कृत केवलमात्र पण्डित लोग जानते थे।

परवर्ती काल में, महासङ्घिक लोग अपने को महायानी नाम से परिचय देने लगे और स्थविरवादियों को हीनयानी नाम से चिन्हित करते। अवश्य हीनयानी लोग अपने को थेरवादी कहते।

कनिष्क, हविष्क तथा वसिप्क के समय को छोड़कर, हीनयानी लोग भारतवर्ष में कभी भी राजानुकूल्य प्राप्त नहीं किया। इसलिए भारतवर्ष में हीनयानी वैसा प्रभाव विस्तार नहीं कर सके। पक्षान्तर में राजानुकूल्य के कारण महायानी मतावलम्बी लोगों की संख्या ने व्यापक भाव से वृद्धि प्राप्त की। हीनयानियों का मतवाद, केवलमात्र सिंहल, ब्रह्मदेश, श्यामदेश, जावा, वोर्नियों प्रभृति देश में प्रचारित हुआ। अपर पक्ष में महायानी मतवाद भारत, साइवेरिया, जापान, तिब्बत प्रभृति देश में प्रचारित हुआ।

महायानियों के मध्य चतुर्विध दार्शनिक मतवाद प्रचलित है। इस मत पार्थक्य के कारण हुआ आत्मा तथा उस विषय

सम्पर्कित विभिन्न मतवाद। भगवान बुद्ध 'आत्मा' समझाने के लिए पालि मे 'अत्ता' शब्द का 'निज' अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। असल में भगवान बुद्ध ने, डीक किस अर्थ में, शब्द का व्यवहार किया था, वह बौद्ध भिक्षुक लोग सम्यक भाव से अनुधावन नहीं कर पाये।

चार्वाक

बुद्ध के समय नास्तिक्य मतवाद प्रबल हो उद्गड्गा था। नास्तिकवादियों के मध्य अन्यतम पण्डित थे अजितकेशकाम्बलो। नास्तिक मतवाद का अधिक भाग ग्रंथ दुर्बोध्य भाषा में लिखित हुआ था। इसलिए ये विशेष जनप्रियता लाभ नहीं कर सके। अजितकेशकाम्बली चार्वाक के जड़ दर्शन के विश्वासी थे। बौद्ध दर्शन को किन्तु ठीक जड़ दर्शन के पर्याय में डाला नहीं जा सकता।

चार्वाक दर्शन केवलमात्र चतुर्भूत को स्वीकार करता है और यह दर्शन देहात्मवाद नाम से परिचित है। चार्वाक-स्वीकृत चतुर्भूत हुये क्षिति, अप, तेज, और मरुत्। उनके मत से चतुर्भूत के मिश्रण के फल से ही चैतन्य की सृष्टि हुई। जैसे चूने और कत्थे के मिश्रण से लाल रंग तैयार होता है। चार्वाक के मत से एक ही भाव से प्रकृत अस्तित्व न रहने से, चैतन्य की सृष्टि हुई है। चार्वाक ने आत्मा, परमात्मा तथा वेद को स्वीकार नहीं किया और इसी कारण से वे नास्तिक की तरह चिन्हित हुए थे। भारतीय दर्शन में, जो आत्मा, परमात्मा तथा वेद, इन तीनों में किसी पर विश्वास नहीं करते हैं उन्हें नास्तिक कहा जाता है।

पूर्व मीमांसा दर्शन परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। अन्य दिशा में, सांख्य-प्रणेता कपिल आत्मा तथा वेद को स्वीकार करने पर भी परमात्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं किए। षड्दर्शन वेदै को स्वीकार करता है। षड्दर्शन हैं-

(क) सांख्य

(1) कपिल-सांख्य पुरुष प्रकृति तथा वेद को स्वीकार करता है।

(2) पातञ्जल तथा सांख्य बहु पुरुष तथा एक प्रकृति के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं। इन दोनों दर्शनों के मत से जगत्स्रष्टा भी मुक्त पुरुष नहीं है।

(ख) न्याय

(3) गौतमीय न्याय

4) कणादीय न्याय (वैशेषिक)

(ग) मीमांसा

(5) जैमिनी का पूर्व मीमांसा क्रियाकाण्ड का विश्वासी है। जो यह मतावलम्बी हैं वे स्वर्ग-नरक तत्त्व पर विश्वास करते हैं।

(6) बाद्रायण व्यास का उत्तर मीमांसा, ब्रह्म तथा वेद में विश्वास करने पर भी आत्मा तथा जगत के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता।

यह दर्शन साधारणतः वेदान्त दर्शन के नाम से परिचित हैं।

(घ) बौद्ध दर्शन

यह दर्शन पञ्चभूत का विश्वासी है।

(ङ) चार्वाक

चतुर्भूत स्वीकार करता है। बौद्ध और चार्वाक दर्शन षड्दर्शन के अन्तर्गत नहीं आते हैं। ये दोनों दर्शन वेद में विश्वास नहीं करते हैं।

प्रमाण तीन प्रकार का होता है। ये हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम। चार्वाक प्रत्यक्ष को, एकमात्र प्रमाण कहकर, विश्वास करते हैं।

प्रत्यक्षेक प्रमाणवादितया अनुमानोद

अनङ्गिकारेण प्रमाण्या भावात्।

बुद्ध कर्मफल को स्वीकार करते हैं किन्तु चार्वाक नहीं करते।

चार्वाक के मतानुसार-

यावज्जीवं सुखं जीवं नास्तिमृत्युरगोचरः ।
यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा धृतं पीवेत्।।
न स्वर्गो ना पवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकम्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतं ।

'देह परिणामवाद' के नाम से एक और चार्वाक दर्शन है।

चतुर्थ्यः खलुभूतेभ्यः चैतन्यमुप जायते।
किन्वादिभ्यः समतेभ्यः द्रव्येभ्यः मदशक्रिवत् ।

इस दिशा में विचार करने से दीख पड़ता है कि बौद्ध दर्शन चार्वाक दर्शन की अपेक्षा उन्नत्तर है। भगवान बुद्ध बोले-

"अत्ताहि अत्तानाम नाथः"

बौद्ध धर्म मत

भारत में बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा के पीछे कई कारण थे। उसके मध्य प्रधान कारण ये हैं-

(1) पण्डितों ने साधारण मनुष्य के मध्य दर्शन प्रचार नहीं किये। उन्होंने प्राकृत भाषा से घृणा की है और उसकी अवज्ञावश 'भाखा' कहकर अभिहित किया है।

(2) उस समय कोई प्रसिद्ध दार्शनिक या तत्त्वदर्शी नहीं थे।

(3) साधारण जनगण ने, पण्डितों को मान्यता नहीं दी।

(4) उस समय के दो दिक्पाल आचार्य श्री संजय और श्री गयाकश्यप बुद्ध को प्रभावित करने में सक्षम नहीं हुये। इन्हीं समस्त कारणों से ही बौद्ध धर्ममत भारत में व्यापक भाव से प्रचारित और ग्रहण योग्य कहकर विवेचित हुआ था।

बौद्ध धर्म-मतानुसार आत्मा के पुनर्जन्म स्वीकार करने के साथ-साथ एक ऐसा प्रश्न उत्थित हुआ था कि, जब आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता है, तब पुनर्जन्म किसका होता है ? बौद्ध भिक्षु और परवर्ती काल में महायानी पण्डितों के मध्य इस प्रश्न को केन्द्र कर वितर्क और मतभेद की सूचना हुई थी।

फिर बुद्धदेव ने कर्मफल स्वीकार किया है। संगत कारण से ही प्रश्न उड़्गा था कि कौन कर्म-सम्पादन करता है और कर्मफल किसके द्वारा प्राप्त होता है ? इसलिए इस क्षेत्र में आत्मा

के अस्तित्त्व को स्वीकार कर लेना छोड़ कर प्रश्न का सदुत्तर पाना संभव नहीं है।

बुद्धदेव के जीवन के शेष काल में उनके शिष्यों ने दो प्रश्नों का उत्तर चाहा था। क्या ईश्वर है? और क्या यह सत्य है कि ईश्वर नहीं है? दोनों प्रश्नों के उत्तर में बुद्धदेव नीरव रहे। उनकी इस नीरवता को, शिष्यों के एक दल ने अर्थ लगाया-ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। दूसरे दल ने अर्थ लगाया-ईश्वर हैं। दूसरी दिशा में तीसरे एक पक्ष ने यह व्याख्या उपस्थित की कि ईश्वर है किन्तु उनका अस्तित्व अस्ति नास्ति के ऊर्ध्व है। अर्थात् परम चैतन्य अनिर्वचनीय और मानसातीत हैं।

यतो वाचा निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मनो विद्वान मा विभेति कुतश्चनः।।

बौद्ध मायावाद

बौद्ध मायावाद चार शाखाओं में विभक्त है-

(1) प्रत्यक्ष वाह्य वस्तुवाद या सौतान्त्रिक दर्शन।

(2) अनुमेय वाह्य वस्तुवाद या वैभाषिक दर्शन।

(3) सर्वशून्य या माध्यमिक दर्शन।

(4) क्षणिक विज्ञानवाद वा बौद्ध योगाचार।

(1) प्रत्यक्ष वाह्य वस्तुवाद

इस दर्शन में विश्व ब्रह्मांड का अनादि और अनन्त रुपी अस्तित्व स्वीकार किया गया है। कहा गया है-जब चैतन्य आलयीभूत होता है तब वह ज्ञान में रुपान्तरित होता है (जिसको वस्तुरुप धारण करने की योग्यता है वह है 'आलय')। वाह्य जगत् क्षण-स्थायी है किन्तु इसकी तीव्र गतिशीलता के कारण (सञ्चर और प्रतिसञ्चर) धारावाहिक अस्तित्व अनुभूत होता है। हिन्दू दर्शन में सञ्चर बोलने से जाना जाता है ब्रह्म से वहिर्मुखी गति

और प्रतिसञ्चर बोलने से समझा जाता है ब्रह्माभिमुखी गति। अर्थात् सञ्चर हुआ ब्रह्म की विकर्षणी शक्ति और प्रतिसञ्चर हुआ ब्रह्म की आकर्षणी शक्ति।

(2) अनुमेय वाह्य वस्तुवाद

यह मतवाद ज्ञान प्रवाह को स्थायी सत्ता के रूप में मान लेता है। वाह्यजगत् है, किन्तु उसकी उपलब्धि कभी भी नहीं की जा सकती। जब चैतण्य या ज्ञान तरंग आती है, तब मन चित्त के, संस्कारानुसार रुप ग्रहण करता है।

मन के गृहीत रुप को सत्य बोलकर मान लिया जाता है। ज्ञान जब आलम्बन के संस्पर्श में आता है तदाकार प्राप्त करता है। वे वाहिक आलम्बन को अनुभूत विषय के रुप में ग्रहण करते हैं।

(3) सर्व शून्यवाद

इसे माध्यमिक दर्शन के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस दर्शन के प्रणेता हैं श्री नागार्जुन। उन्होंने पाञ्च

भौतिक जगत् के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। उनके मत से, हमलोग जो वाह्य जगत को प्रत्यक्ष देखते हैं, वह है माया। इस दर्शन के साथ शङ्कराचार्य के मायावाद का (ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या) सादृश्य लक्षणीय है। श्रीनागार्जुन के मतानुसार "कुछ नहीं" से विश्व की उद्भूति हुई अभाव से भाव की सृष्टि। यह विश्व स्वप्न छोड़कर कुछ नहीं है। यह केवल मात्र वर्तमान को स्वीकार करता है-अतीत और भविष्य को नहीं। इस दर्शन में यह भी बोला गया है कि विश्व ब्रह्माण्ड "कुछ नहीं में विलीन हो जायेगा।

(4) क्षणिक विज्ञानवाद

यह दर्शन भौतिक जगत को स्वीकार नहीं करता है। यह सब कुछ चिरन्तन है। ऐसा कि आलम्बन भी चिरन्तन है। वहिर्विश्व में जो कुछ प्रत्यक्षगोचर है, वह सब है अभ्यन्तर के आलम्बन की प्रतिक्रिया मात्र। आत्मा है आमित्व बोध का सम्मिलित हृप। यह अविच्छिन्न प्रवाह न होने पर भी, इसकी द्रुत

सृष्टि और विलोप एक ही सदृश अविच्छिन्न प्रवाह की तरह उपस्थित करता है।

भगवान शङ्कराचार्य के समय बौद्धों के मध्य कोई अच्छा दार्शनिक या तत्त्व द्रष्टा नहीं थे। ठीक उसी समय बौद्ध धर्म मत की विभिन्न शाखा-प्रशाखा के मध्य पारस्परिक मत विरोध ने चूड़ान्त आकार धारण किया। इस समय श्री मण्डन मिश्र थे एकमात्र पण्डित जो सर्व शून्य वाद में विश्वास करते थे। वे क्रियाकाण्डी भी थे। किन्तु शङ्कराचार्य के साथ वे तर्क युद्ध में परास्त हो गए।

बौद्ध दर्शन चार सत्य की बातें बोलता है; इनको "चतुरार्य सत्य" कहा जाता है। ये सब हैं-

(1) दुःख

(2) दुःख का कारण

(3) दुःख की निवृत्ति

(4) दुःख की निवृत्ति का उपाय

दुःखवाद की सिकृति से परवर्ती काल में अतिसुखवाद नामक एक दर्शन का उद्भव हुआ था। इसका बंगाल, असम और तिब्बत में विशेष भाव से प्रभाव विस्तार हुआ था।

दुःख हुआ आर्य सत्य। किन्तु यह एक भूल व्याख्या है। क्योंकि एकमात्र मन ही दुःख की उपलब्धि करने में सक्षम है। इसलिए यह केवल आपेक्षिक सत्य की तरह परिगणित हो सकता है। परम सत्य नहीं।

शङ्कर दर्शन

शङ्कराचार्य थे एक शैव तान्त्रिक। इसलिए उन्होंने तन्त्रवाद की विरोधिता नहीं की। वे निर्गुण ब्रह्म में विश्वास करते थे। उनके मतवाद के साथ बौद्ध शून्यवाद का कुछ क्षेत्र तक सादृश्य देखा जाता है। शङ्कराचार्य ने वाह्य जगत के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने गुणान्वित मायावाद को मान लिया था। उसके प्रभाव के कारण बौद्धतन्त्र तिरोहित हुआ। किन्तु हिन्दू तन्त्र की देव-देवियाँ रह गयीं। आज भी साधारण मनुष्य भी तममन्यता के कारण बौद्धतान्त्रिक देवी तारा, मनसा (सर्पदेवी) शीतला, बाराही प्रभृति देवियों की पूजा करते हैं।

शङ्कराचार्य ने जिस समय अपने मतवाद का प्रचार किया उस समय शून्यवादियों का विशेष आधिपत्य था। श्री शङ्कराचार्य ने श्री बादरायण व्यास के उत्तर मीमांसा को स्वीकार किया है।

बौद्ध दार्शनिकों के साथ श्री शङ्कराचार्य की आलोचना कौतूहलोद्दीपक हैं। जैसे-शून्यवादी बोलते हैं-विश्व ब्रह्माण्ड शून्य से उद्भूत हुआ है, इसलिए शून्य में ही विलीन हो जाएगा-जगत् स्वप्न मात्र है। शून्यवादियों के इस वक्तव्य को खण्डन करने के लिए शङ्कराचार्य बोले-यदि जगत् शून्य या स्वप्नराज्य है तब इस स्वप्न को प्रत्यक्ष करने के लिए किसी एक साक्षी सत्ता के अस्तित्व का प्रयोजन है। उत्तर में शून्यवादी बोले-साक्षी सत्ता कहकर कुछ नहीं है। भ्रमवश विश्व ब्रह्मांड परिदृश्यमान लगता है। जैसे रज्जू से सर्प भ्रम होता है। शङ्कराचार्य का उत्तर : यह कभी भी संभव नहीं है। शङ्कराचार्य पुनः पूर्व युक्ति की अवधारणा कर बोले-यदि स्वप्न देखने वाले लोग ही नहीं रहे तो स्वप्न देखेगा कौन ? जगत् यदि रज्जू से सर्प भ्रम की तरह मिथ्या है तो उस क्षेत्र में वह भी मान लेना होगा कि रज्जूवत् जगत् का कुछेक है जिसको मनुष्य भ्रमवंश विश्व कहकर समझते हैं। जैसे रज्जु है-बोलने से ही तो, उसे सर्प बोलकर, भ्रम होना सम्भव हुआ। यह छोड़कर एक मनुष्य ऐसा भी होगा जो यह भूल करेगा। अनुरुप भाव से इस जगत् को मायारुप देखने के लिए भी तो एक मनुष्य

की आवश्यकता है। इसका निर्गलितार्थ हुआ। जगत् व्यतीत अपर सत्ता के अस्तित्व को भी स्वीकार करेगा। इसलिए माध्यमिक दार्शनिकों का वक्तव्य हुआ : यहाँ बोलने से 'कुछ नहीं' समझ में नहीं आता। तुम लोग जिसको ब्रह्म बोलते हो हम लोग उसी को शून्य बोलते हैं।

यथा शून्यवादिनां शून्यम्। ब्रह्म विदांस्तथा।।

शङ्कराचार्य उत्तर मे बोले-इसका अर्थ यह हुआ कि जो देखे अर्थात् द्रष्टा तथा जिसको देखा जाय अर्थात् उभय विषय ही भ्रम है। क्योंकि जहां द्रष्टा बोलकर कुछ है नहीं, वहाँ रज्जू से सर्प भ्रम का प्रश्न ही नहीं उठता। शून्यवादी शङ्कराचार्य के इस अकाट्य युक्ति का कोई जवाव नहीं दे सके। तब क्षणिकवादी युक्ति देकर बोलते हैं, ये भ्रम सर्बदा क्षणिक है। उत्तर में शङ्कराचार्य बोले- उनके मत से ब्रह्म अनादि और अनन्त है। किन्तु आप लोगों का क्षण एक मुहूर्त के लिए सक्रिय और पर

मुहूर्त में अन्तर्हित हो जाता है। अतएव प्रश्न यह है कि क्षणिक सत्ता कहाँ से आया। इस सृष्टि और विलोप के समय के मध्य तब अवश्य ही किसी एक सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। क्षणिकवादियों का उत्तर-सृष्टि के साथ-साथ वह विलुप्त हो जाता है। शङ्कराचार्य बोले- इससे किसी सत्ता का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता है। क्षणिकवादी लोग इसका सदुत्तर नहीं जानते थे। तथापि वे बोलते रहते - यह अस्तित्व अति नगण्य है। किन्तु शङ्कराचार्य के प्रश्न का यथार्थ उत्तर यह हो नहीं सकता।

शङ्कराचार्य के अकाट्य यौक्तिकता और प्रबल तार्किकता के सामने केवल शून्यबादी या क्षणिकवादी ही नहीं प्रत्यक्ष वस्तुवादी और अनुमेय वाह्य वस्तुवादी बौद्ध पण्डित लोग परास्त हो गए। शेषावधि ये सब विजित दार्शनिकों ने शङ्कराचार्य के साथ सख्यता स्थापना किया और कूलकुण्डलिनी तत्त्व को बिना शर्त के स्वीकार कर लिए। इसके फल श्रुति स्वरुप बौद्ध-योग का उत्थान सूचित होता है।

शांकर दर्शन की त्रुटि

शङ्कराचार्य के मतानुसार जगत् माया के प्रभाव से एक स्थिर विषय के ऊपर आधारित है। इसको इन्होंने ब्रह्म कहकर अभिहित किया है। उन्होंने रज्जु में सर्प भ्रम की तुलना का उल्लेख किया है। किन्तु प्रश्न उठता है, सर्प का भ्रम होना, किसके लिये संभव है ? उसी के लिए सम्भव है जो सर्प क्या है, इसके सम्बन्ध में पहले से ज्ञात है। ब्रह्म विश्व के रुप में प्रतीत होता है। इसका अर्थ हुआ प्रकृत विश्व ब्रह्मांड का अस्तित्व है और किसी न किसी स्थान पर उसने अपना अस्तित्व सुरक्षित रखा है। अर्थात् शङ्कराचार्य का 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' यह मूल वक्तव्य ही भित्तिहीन हो जाता है। आश्चर्य का विषय है, शङ्कराचार्य के दर्शन का इस अंश के सम्पर्क में बौद्ध लोगों ने कोई प्रश्न ही नहीं किया। और इसी कारण से शाङ्कर मत ने प्रतिष्ठा प्राप्त किया था।

शङ्कराचार्य ने जीव और जगत् के अस्तित्व को नहीं माना है। अथच किस तरह से जगत् के सम्पर्क में भ्रमोत्पादन सम्भव है, उसकी कोई व्याख्या उन्होंने नहीं दी।

"अष्टकुलाचलाः सप्त समुद्राः
ब्रह्म पुरन्दर दिनकर रुद्र;
नत्वं नाहं नायं लोकः
व्यर्थ किमर्थं क्रियते शोकः।"

अर्थात् जगत् सृष्ट हुआ ही नहीं। इसलिये सगुण ब्रह्म कहकर कुछ है नहीं। शङ्कराचार्य ने केवल निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार किया है।

उनका वक्तव्य है-यह जगत् स्वप्न मात्र है, इस स्वप्न के जो दृष्टा हैं, वे ही ब्रह्म हैं। क्योंकि जीव बोलकर कुछ है नहीं। शङ्कराचार्य के वक्तव्य का असारत्व यहीं अत्यन्त स्पष्ट है।

क्योंकि ब्रह्म निर्गुण होने से, उनके द्वारा देखने की क्रिया कैसे सम्भव है? देखना क्रिया, यह एक गुण विशेष है, वह शङ्कराचार्य की दृष्टि से वञ्चित हो गया।

फिर शङ्कराचार्य बोलते हैं, जो कुछ दिखाई देता है या अभिज्ञता लाभ होती है वह सब है माया का प्रभाव। अर्थात् प्रकारान्तर में स्वीकार कर लिया गया कि माया भी एक सत्ता है। जो शाङ्कर अद्वैतवाद में किसी क्रम में स्वीकार नहीं किया गया।

शङ्कराचार्य साधना की प्रयोजनीयता भी स्वीकार करते हैं फिर भी, जीव के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं। उस सम्बन्ध में प्रश्न उठता है - जीव का अस्तित्व जब असिद्ध है तब साधना कौन करेगा ?

शङ्कराचार्य के मतवाद की एक और त्रुटि है कि वे ब्रह्म को एकदम अनादि और अनन्त कहकर स्वीकार करने पर भी

माया द्वारा प्रभावित हुए हैं। द्वितीय उनके मतानुसार माया के प्रभाव से विश्व जगत् सृष्ट होने पर, ब्रह्म किस प्रकार से निर्गुण रहा। इसको छोड़कर माया के प्रभाव की बात जब कही जाती है, तब यह प्रमाणित होता है कि, जो ब्रह्म को प्रभावित करने में सक्षम है, वह ब्रह्म से भी वृहत्तर शक्ति है। फिर भी, शंकराचार्य ही बोलते हैं, माया कहकर कोई प्रकृत सत्ता नहीं है। यह भ्रममात्र है। मरुभूमि में जैसे मनुष्य दृष्टि विभ्रमवश अनेक दूर से जल, घरद्वार, गाछ-पात की छवि देख पाता है, यद्यपि वहाँ असल में कुछ नहीं है। ज्ञान की अनुपपत्ति ही मनुष्य को भ्रमावद्ध करता है। अतएव प्रश्न उठता है- ब्रह्म में ही (द्रष्टा और ब्रह्म) जब विकार उपस्थित होता है, तब विश्व ब्रह्मांड को किस तरह भ्रम कहकर मान लिया जाय।

शङ्कराचार्य और भी बोले थे, जहाँ ब्रह्म जहाँ माया वहीं प्रश्न उठता है-तब माया को अस्तित्वहीन किस तरह बोला जाय ? यदि माया न रहे, तब ब्रह्म के ऊपर प्रभाव विस्तार की

बात किस तरह उठती है ? यौक्तिकता के द्वारा इस त्रुटि संशोधन करने के लिए शंकराचार्य बोले हैं, माया वास्तविक अस्तित्वहीन नहीं है। यह अनिर्वचनीय है, ऐसा कहा जा सकता है। यहाँ भी प्रश्न आता है- ब्रह्म ने जब माया की सृष्टि नहीं की है, तब माया का स्रष्टा कौन है ? और तब सगुण ब्रह्म ही क्यों नहीं बोला जाय ?

प्रकृत पक्ष में तार्किकता की शक्ति और वाह्याडम्बर देकर शंकराचार्य ने बौद्ध दार्शनिकों को परास्त किया था। कुट तार्किकता के जाल के धूम्रजाल से उन्होंने सहज में ही प्रतिपक्ष की दृष्टि को आच्छन्न किया था, इस बात को स्वीकार न किये, उपाय नहीं है।

जो हो, शंकर की माया 'और' आनन्दमार्ग की 'प्रकृति' एक वस्तु नहीं है। प्रसंगवश यह उल्लेख योग्य है कि

न्याय-मञ्जरी के प्रणेता **जयन्त भट्ट** शंकर मत के एक तीव्र समालोचक थे।

पातञ्जल और सांख्य

(1) दोनों दर्शनों में बहु पुरुष के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है।

(2) दोनों दर्शनों में यह मत व्यक्त किया गया है कि इन पुरुषों की सन्तुष्टि विधान के अभिप्राय से प्रकृति ने इस जगत् की सृष्टि की है। किन्तु यह मत ग्रहण योग्य नहीं है; क्योंकि भोग या सन्तुष्टि मन के अस्तित्व के नहीं रहने से सम्भव नहीं है। पुरुषों को मन ही नहीं है, अतएव उनके सन्तुष्टि-विधान के लिए प्रकृति द्वारा विश्व जगत् की रचना के तत्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(3) प्रकृति का पुरुष से पृथक सत्ता के रुप में, दोनों दर्शनों में, मन प्रकाश किया गया है। यह मत भी ग्रहण योग्य नहीं है। क्योंकि प्रकृति है पुरुष की एक मात्र शक्ति। जैसे अग्नि की दाहिका शक्ति अग्नि से कोई पृथक सत्ता नहीं है। इन दोनों दर्शनों में पुरुष और प्रकृति पृथक भाव से कल्पित होने से इन दार्शनिकों को द्वैतवादी नाम से अभिहित किया गया है।

(4) सांख्य दर्शन ईश्वर में विश्वास नहीं करता। इस दर्शन को निरीश्वर वाद कहकर चिन्हित किया गया है। दूसरी दिशा में पातञ्जल मत ब्रह्म को स्वीकार नहीं करता है। किन्तु ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करता है। इसलिए पातञ्जल दर्शन को सेश्वरवाद कहा जाता है।

(5) दोनों ही दर्शनों में मूर्तिपूजा की स्वीकृति है।

आर्य समाज

(1) आर्य समाज विश्वास करता है-जीव, जगत् और ब्रह्म तीनों ही अनादि हैं। इस विश्वास को गुरुत्व देने का अर्थ, यह मान लेना है कि ब्रह्म-स्वभाव में उत्तीर्ण होने के लिए जीवन के प्रयास का कोई प्रयोजन नहीं है। जीव, जगत् और ब्रह्म स्वभावगत भाव से एक हैं। यह विश्वास ग्रहण योग्य नहीं है। क्योंकि जीव के लिए साधना अर्थात् धर्म चर्चा छोड़कर गत्यन्तर नहीं है। इसके अलावा इस धर्म विश्वास से विश्व जगत् की क्रिया और प्रगति की व्याख्या करना संभव नहीं है।

(2) यज्ञ को कर्म के रुप नहीं साधना के रुप में सम्पादन करने की बात की गई है। किन्तु प्रकृत पक्ष में यज्ञ तो कर्म ही है। आर्य समाज में विशेष एक रीति से अग्नि में आहुति प्रदान को यज्ञ समझा गया है। इस तरह के यज्ञ कार्य की कोई यौक्तिकता रह नहीं सकती।

(3) प्रलय तत्व में भी ये लोग विश्वास करते हैं। किन्तु जीव, जगत्, ब्रह्म सभी जब अनादि हैं तो इनमें प्रलय का स्थान किस रुप में रहना संभव है ?

मार्क्सवाद

(1) मार्क्सवादी लोग मनुष्य के मध्य समता विधान का जो विश्वास का पोषण करते हैं वह सब सैद्धांतिक हैं और वास्तव युक्ति से वर्जनीय है। क्योंकि जगत् में प्रत्येक मनुष्य के साथ प्रत्येक मनुष्य का प्रभेद है। इसलिये उनके मध्य समता विधान का प्रयास भित्तिहीन है।

(2) मनुष्य की दरिद्रता की भित्ति से इस मतवाद की स्वीकृति और प्रसार है। इसलिए देखा जाता है कि दरिद्रय जर्जिरित अञ्चल में ही इसकी जो कुछ भी प्रभाव प्रतिपत्ति है।

(3) अन्यान्य उपधर्म या संगठन के प्रति घोरतर असहिष्णुता है।

(4) काल्पनिक साम्य इसका लक्ष्य है।

(5) हिंसा का आश्रय लेकर यह मतवाद अपना अस्तित्व बचाकर रखता है।

इसके अलावा यहूदी मतवाद, सृष्टीय मतवाद और इस्लाम मतवाद भी हैं। ये सब सेमितिय मतवाद या मजहब है। (तात्विक प्रवेशिका)

सामाजिक मनस्तत्व

समाज में मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा करने में निम्नोक्त मौल उपादानों की एकान्त आवश्यकता है। ये है- (1) एकता, (2) सामाजिक निरापत्ता, (3) शांति;

इन मौल उपादान समूह के लिये प्रकृत पक्ष में जो आवश्यक है उसकी आलोचना नीचे की जाती है -

(1) एकता

किसी भी समाज में या समाज संरचना के लिए सदस्यों के मध्य एकता एकान्त अपरिहार्य है। ऐसा नहीं होने से सामाजिक संरचना विपर्यस्त होने को बाध्य है। समाज-सदस्यों के बीच अत्यधिक वैयष्टिक स्वार्थ केन्द्रिकता के फल एकता का अभाव, अर्थनैतिक और सामाजिक सुविधाभित्तिक दल सृष्टि, दूसरे की कार्यधारा समझने के लिए मानसिक उदारता का अभाव, ये सब सिर्फ किसी समाज के अधः पतन की सूचना ही नहीं करते, ये सब उस समाज को धरा पृष्ट से एकदम निश्चिह्न कर देते हैं। इस पृथ्वी के क्षुद्र परिचित इतिहास में बहुदल और साम्राज्यों की अवलुप्ति के दृष्टान्त का अभाव नहीं है। अतएव समस्या है समाज की रक्षा करना। समाज के सदस्यों को निम्नोक्त

भावधारा में उद्बुद्ध करने से सामाजिक ऐक्य की प्रतिष्ठा करना सम्भव है

(क) साधारण आदर्श

(ख) जाति भेद विहीन समाज

(ग) सामूहिक सामाजिक अनुष्ठान उत्सव

(घ) चरम दण्ड-प्रथा राहित्य।

(क) साधारण आदर्श – यह बात प्रायः सुनी जाती है कि युद्ध के समय किसी देश के मनुष्यों के बीच जिस तरह की एकता देखी जाती है, वैसी दूसरे समय नहीं देखी जाती।

यह सम्पूर्ण रुप से मातृभूमि के प्रति प्रेम के कारण ही सम्भव है। कारण, उस समय सबका एक ही आदर्श या लक्ष्य होता है, युद्ध की विभोषिका का मुकाबला करना। यह जो साधारण आदर्श है, यह नितान्त क्षणस्थायी होता है। युद्ध की विपत्ति टल जाने से साधारण आदर्श भी लूप्त हो जाता है। हम लोगों के आनन्द मार्ग में शिशुकाल से ही साधारण आदर्श का बीज वपन

किया गया है। पाँच वर्ष के उम्र के शिशु जब परिपार्शिवकता के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान अर्जन कर लेता है, तभी उसे ब्रह्म भावना दी जाती है। इसलिए आनन्द मार्ग का समाज एक साधारण आदर्श के ऊपर-ब्रह्मत्व लाभ के लक्ष्य के ऊपर प्रतिष्ठित है। यह भित्ति युद्ध की विपत्ति के समान कभी भी नष्ट नहीं होगी। इसलिए ब्राह्मी आदर्श की भित्ति पर चिरन्तन ऐक्य की प्रतिष्ठा सम्भव है। हम लोगों के आनन्द मार्ग में अर्थनैतिक क्षेत्र में भी "पृथ्वी की यावतीय सम्पत्ति सभी की साधारण सम्पत्ति है और समाज के सभी लोग इस न्याय के भागी हैं" इसी साधारण आदर्श को ग्रहण किया गया है।

इस आदर्श को आनन्द मार्ग के प्रत्येक सदस्य के मन में बद्धमूल करने के लिए संघ के यावतीय उत्सव अनुष्ठान के प्रारम्भ में आवृत्ति की जाती है -

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्
देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।

समानीव आकुती समाना हृदयानिवः
समानमस्तु वो मनो यथावः सुसहासति ।।

सबके प्रति प्रेम, सम्पूर्ण मानव जाति को एक परिवार के रुप में ग्रहण करना, विश्व की यावतीय सम्पत्ति को सबों की साधारण सम्पत्ति समझना, उसका यथायथ व्यवहार करना, शिशुओं के नामकरण अनुष्ठान में अंश ग्रहणकारी व्यक्तियों को समवेत भाव से शिशु के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के विधान का दायित्व ग्रहण इत्यादि निःसन्देह एक असाधारण आदर्श की सूचना देता है।

(ख) जाति भेद विहीन समाज व्यवस्था.

और एक गुरुत्वपूर्ण उपादान है, जो समाज में विपर्यय लाता है। जाति भेद व्यवस्था का अभिशाप, भारत जैसा, पृथ्वी के और किसी देश में देखा नहीं जाता। सामाजिक एकता रक्षा के लिए समाज के अर्थनैतिक और विविध सामाजिक सुविधान्वेषी

क्षुद्र क्षुद्र गोष्ठी की सृष्टि होने देना उचित नहीं है। हम लोगों के आनन्द मार्ग में सम्पूर्ण मानव जाति को एक ही परिवार में अन्तर्भुक्त मानकर अकृत्रिम प्रेम के सूत्र में आबद्ध किया गया है। यहाँ व्यष्टि विशेष अपने को जीवन मात्र कहकर परिचय देते हैं। इसलिए एकमात्र जाति भेद विहीन समाज व्यवस्था ही केवल अपने अस्तित्व को बचाकर रख सकता है। आनन्द मार्ग के यावतीय सामाजिक अनुष्ठान के विशिष्ट परिचालक और कर्मीगण परस्पर गुरुभाई के रूप में एक दूसरे से परिचित होते हैं- जाति भाई के रूप में नहीं। एक शिशु के नामकरण अनुष्ठान से लेकर श्राद्धानुष्ठान पर्यन्त समस्त अनुष्ठान में कर्मी या परिचालक रूप में जो भाग लेते हैं वे समाज के तथाकथित कोई जाति या वर्ण के हो सकते हैं- उनका एकमात्र परिचय होता है- 'गुरुभाई'।

साथ ही साधारण लक्ष्य के रुप में ब्रह्म को ग्रहण करने के फलस्वरुप ऐसे एक समाज की प्रतिष्ठा संभव होती है, जहाँ प्रत्येक व्यष्टि अपने को जीवमात्र बोल कर परिचय देता है-

उसका और कोई विशेष जाति-वर्ण या सम्प्रदाय नहीं रहता है। यहाँ व्यक्ति विशेष के दोष के लिए किसी सम्पूर्ण परिवार को सामाजिक अनुष्ठान में योगदान के सुयोग से वञ्चित नहीं किया जाता है। इससे समाजच्युत परिवार समूह का एक पृथक समाज बनाने की आशंका भी नहीं रहती है। जिस समाज में विवाह, धर्मशास्त्र अध्ययन या किसी प्रकार की उन्नति के लिये कोई विशेष दल वा गोष्ठिगत विचार नहीं है वहाँ जातिभेद की सृष्टि होने की भी सम्भावना नहीं है। हम लोगों के आनन्द मार्ग में चूँकि प्रत्येक शिशु के लालन-पालन को सामाजिक दायित्व माना जाता है, विश्व के यावतीय सम्पत्ति को सबों के साधारण सम्पत्ति के रुप में गण्य किया जाता है और धर्मीय अनुशीलन के लिये कोई जातिवर्णगत प्रतिबन्धकता नहीं है, इसलिये यहाँ सामाजिक, अर्थनैतिक या आध्यात्मिक कोई भी कारण से जाति भेद की सृष्टि नहीं हो सकती।

(ग) सामूहिक सामाजिक अनुष्ठान

एक का दूसरे के सम्बन्ध में उदासीन रहने के कारण समाज में नाना प्रकार की त्रुटि-विच्युति दीख पड़ती है। इसके फलस्वरुप समाज के सदस्य केवल एक दूसरे के सम्बन्ध में अज्ञ ही नहीं रह जाते हैं, परस्पर के प्रति निस्पृह और असहिष्णु हो उठते हैं। सामाजिक अनुष्ठान में समाज के सदस्यगण एकत्र मिलते हैं। इसलिए ये सब उत्सव अनुष्ठान हैं एकता के एक विशेष गुरुत्वपूर्ण वाहन।

मिलित भाव से जब अनेक एक विशेष अनुष्ठान में अंश ग्रहण करते हैं तब वे कुछ क्षण के लिये एक ही क्रिया में रत होते हैं, इससे सबों के मन में एक ऐक्यभाव की सृष्टि होती है और परस्पर के सम्बन्ध में आग्रही हो उठते हैं। आनन्द मार्ग में इसलिए इस तरह के साधारण सामाजिक अनुष्ठानों को विशेष भाव से उत्साहित किया जाता है। मिलित स्नान और धर्मचक्र दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से साधारण सामाजिक

अनुष्ठान की भूमिका ग्रहण करता है। इन सभी अनुष्ठानों में सबों के अंश ग्रहण व एकता के लिए विशेष सहायक है। इस तरह के अनुष्ठानों में अंश ग्रहणकारियों के मध्य पारस्परिक असहिष्णु भाव नहीं रहता वरन् उसके बदले एकता का भाव आता है। ये अनुष्ठान इसलिए सामाजिक एकता के अति गुरुत्वपूर्ण माध्यम हैं।

(घ) चरम दण्ड संहिता

चरम दण्ड व्यवस्था समाज के अवक्षय को बुला लाती है और उसके फल-स्वरूप दण्ड प्राप्त व्यष्टि की अग्रगति रुद्ध हो जाती है। ये सब दण्ड-प्राप्त व्यष्टि समाज के अपराधियों को लेकर एक गोष्ठी या दल तैयार कर लेते हैं। फलस्वरूप समाज में विशृङ्खलता की वृद्धि होती है। हमलोगों के आनन्द मार्ग में कहीं दैहिक या सामाजिक चरम दण्ड अनुमोदित नहीं है। एकमात्र जो दण्ड व्यवस्था आनन्द मार्ग में अनुमोदित है वह है अपराधी को निर्दिष्ट समय अवधि तक किसी प्रकार के

सामाजिक अनुष्ठान में अंश ग्रहण के सुयोग से वञ्चित करना। उस दण्ड काल के अतिक्रान्त हो जाने से दण्डित व्यष्टि फिर स्वाभाविक रूप से सामूहिक अनुष्ठान में अंश ग्रहण करना शुरू करता है।

इस दण्ड व्यवस्था से उसके परिवार परिजन वर्ग को किसी प्रकार का क्लेश भोग करना नहीं पड़ता है। प्रचलित समाज व्यवस्था में समाजच्युत या कारामुक्त व्यष्टि की तरह आनन्द मार्ग में दण्ड प्राप्त व्यष्टि के नैतिक मान के ऊपर किसी विशेष कलंक का आरोप नहीं किया जाता। आनन्द मार्ग की दण्ड व्यवस्था में दूसरा एक दण्ड है कि दण्ड प्राप्त व्यक्ति को बोला जाता है कि उसे अन्ततः दस मनुष्य को शुभ बुद्धि के पथ पर लाना होगा तभी वह सामाजिक अनुष्ठान में योगदान की अनुमति प्राप्त करेगा। इस तरह की शास्ति हुई एक संशोधनमूलक व्यवस्था। यह व्यवस्था अपराधी की अग्रगति को रुद्ध नहीं कर उसके सुधरने का सुयोग देती है और उसे सत्पथ में परिचालित करती है। इस सब शास्ति से अपराधी तथा उसके परिवार के ऊपर किसी स्थाई कलंक का आरोप नहीं किया जाता, इससे वह

समाज में किसी विश्रृंखलता और अनैक्य की सृष्टि नहीं करता है पक्षान्तर में अपराधी-शास्ति काल में दस जन व्यष्टि को सतपथ दिखाने के कार्य में चेष्टित रहने से उसके साधारण जीवन यात्रा की अपेक्षा वह भले कार्य में जीवन अतिवाहित करता है। इसलिये वह सिर्फ अपनी उन्नति ही नहीं करता, सत् आदर्श का प्रचार कर समाज की भी उन्नति करता है।

(2) सामाजिक निरापत्ता

सामाजिक निरापता के अभाव में समाज में विभाजन देखा जाता है। जिस समाज में अन्याय, अविचार के विरुद्ध सदस्यों की निरापत्ता की कोई व्यवस्था नहीं, वह समाज अधिक दिन स्थायी नहीं हो सकता। श्रृंखला के अभाव में भी सामाजिक निरापत्ता विपर्यस्त हो जाती है।

सभी समाज के विधान को ठीक भाव से पालन नहीं करने से सामाजिक निरापत्ता विघ्नित होती है। इस कारण

सामाजिक निरापत्ता के लिये जिनका विशेष भाव से प्रयोजन है वे हैं (क) सुविचार, (ख) कठोर श्रृंखला।

(क) सुविचार

सामाजिक निरापता अक्षुण्ण रखने के लिए अर्थनैतक, जातिगत तथा स्त्री पुरुषगत कारण से कोई अविचार रहने देना उचित नहीं है। अर्थनैतिक अविचार मुख्यतः श्रम की मर्यादा नहीं देने की ही फलश्रुति है। समाज में व्यक्तिगत भेदाभेद से ही अर्थनैतिक अविचार की सृष्टि होती है। आनन्द मार्ग में परपिण्ड भोजी से मलाकर्षी का जीवन श्रेय माना जाता है। जीविका अर्जन को जिस समाज में इतना बड़ा महत्व दिया जाता है, उस समाज से विभिन्न प्रकार का अर्थनैतिक अविचार दूर होने को बाध्य होगा। अर्थनैतिक अविचार व्यष्टि-विशेष की स्वाभाविक सब्चय वृत्ति से भी आ सकता है। मनुष्य यावतीय सम्पद स्वयं भोग करना चाहता है किन्तु यदि वह यह बात समझना सीखे कि

जगत् की सम्पत्ति के ऊपर सभी को यौथ अधिकार है, तब अर्थनैतिक अविचार बहुलांश में ह्रास हो जायेगा; हम लोगों के मार्ग में माना जाता है कि विश्व की यावतीय सम्पत्ति सभी की साधारण सम्पत्ति है और इस सम्पत्ति का व्यवहार सबों को मिलकर करना होगा। इस तरह की भावधारा से उद्बुद्ध समाज में अर्थनैतिक अविचार का विशेष अवकाश नहीं रहता।

स्त्री-पुरुषगत भेद बुद्धि से और एक प्रकार का सामाजिक अविचार देखा जाता है। मनुष्य के समाज में अनेक क्षेत्र में ही स्त्री-पुरुष एक दूसरे को अपने से हीन मानते हैं। इस पृथ्वी के बहुअ अञ्चल में स्त्री जाति को पुरुष का भोगोपदान कहकर माना जाता है। विश्व के तथाकथित अनेक उन्नत देश में स्त्रियों को साधारण निर्वाचन में बोटाधिकार नहीं है। किसी-किसी देश में नारी जाति को आध्यात्मिक साधना के अनुपयुक्त समझा जाता है।

हम लोगों के आनन्द मार्ग में स्त्री-पुरुष दोनों का ही समान अधिकार और दायित्व स्वीकृत है। आनन्द मार्ग की विवाह पद्धति में पुरुष और नारी दोनों को ही समान दायित्व ग्रहण करना होता है। यहाँ नारी जाति को आध्यात्मिक अनुशीलन में अनुपयुक्त माना नहीं जाता है। आनन्द मार्ग मे पुरुष या नारी को एक ही दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ इसलिए पुरुष को नारी की अपेक्षा श्रेष्ठ मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

तथाकथित एक विशेष जाति के लोग जो अन्यों की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठ समझते हैं, वे प्रायः अन्यान्यों के प्रति अविचार कर बैठते हैं। हिटलर का तथाकथित श्रेष्ठ आर्य जाति द्वारा जर्मनी से यहूदी विताइन समाज का जातिगत अविचार का ज्वलन्त उदाहरण है। भारतवर्ष में हरिजनों के ऊपर तथाकथित उच्च वर्ण के मनुष्य के अविचार के फलस्वरुप समाज में भयानक दरार पड़ा है। यह सब सामाजिक अविचार निर्मूल करने के लिए सर्वप्रथम जाति भेद का मूलोत्पाटन करना होगा। हम

लोगों के आनन्द मार्ग में प्रथम पर्याय में ही किसी भी मनुष्य को उसके जातिवर्ण या सम्प्रदाय की बात भूल जानी पड़ती है। वह फिर अपने को अमुक जाति या अमुक सम्प्रदाय का है ऐसा कहकर परिचय नहीं देता। जातिभेद-युक्त सामाजिक अनुष्ठान में जातिगत संस्कार का प्रभाव बहुत प्रबल रहता है। आनन्द मार्ग के सामूहिक अनुष्ठान में सभी जाति, वर्ण या सम्प्रदाय के लोग समान भाव से अंश ग्रहण करते हैं। वर्तमान समाज में विवाहादि के क्षेत्र में जात-पाँत, सम्प्रदाय, जातीयता आदि के ऊपर अधिक गुरुत्व दिया जाता है। किन्तु हम लोगों के मार्ग में इस तरह की संकीर्णता को प्रश्रय नहीं दिया जाता है। हम लोगों के मार्ग में जीवन के शुरू से ही मानवतावाद का बीज वपन किया जाता है और समग्र मानवता की एक वृहत् परिवार के रूप में देखा जाता है।

इस तरह के समाज में इसलिए अर्थ, नीतिगत, स्त्री-पुरुषगत या जातिगत भेद भावना भित्तिक अविचार नाम का कुछ नहीं रहेगा।

(ख) कठोर श्रृंखला

इतिहास में प्रायः देखा जाता है कि श्रृंखला बोध के अभाव में बहुत समाज धरा पृष्ठ से निश्चिह्न हो चुका है। समाज के कुछ संख्यक सदस्य के विश्रृंखल आचरण बाकी के शान्तिपूर्ण जीवन-यात्रा को व्याहत कर सकता है। इसलिए समाज की रक्षा के लिये श्रृंखला अत्यावश्यक है। सामाजिक विधान को कुछ संख्यक सदस्य त्रुटि-युक्त मानते हैं। इससे समाज में विश्रृंखला की सृष्टि होती है। उन लोगों का ऐसा सोचना यदि सामाजिक नियम भठ करने का कारण न होकर सिर्फ सोचना या तर्क-वितर्क के स्तर तक सीमा बद्ध रहे, तब तो अवश्य किसी विश्रृंखला की सृष्टि नहीं होगी। श्रृंखला-रक्षा के लिये सामाजिक नियम कानून

युक्ति पूर्ण होना चाहिए और समाज की प्रगति के साथ तालमेल रखकर इन नियम-कानूनों को भी परिवर्तनशील होना आवश्यक है। और तभी समाज में श्रृंखला रक्षित होगी। हम लोगों के मार्ग में अयौक्तिक कुछ का भी स्थान नहीं है। जहाँ युक्ति को इतना गुरुत्व दिया जाता है और युक्ति के लिए परिवर्तन को भी मानते हैं, वहाँ असन्तोष तथा विश्रृंखला की सृष्टि की आशंका नहीं रहती। साथ ही आनन्द मार्ग में आनुगत्य के बाद ही युक्ति तर्क का स्थान दिया गया है। यही समाज की श्रृंखला निश्चित करता है। समाज के आइन-कानून के प्रति पहले आनुगत्य स्वीकार कर उस पर यदि वह समझे कि आइन-कानून त्रुटिपूर्ण है, तब उसके पक्ष में युक्ति दिखाना और उसका संशोधन करने का उसका अधिकार अवश्य है।

किन्तु आनुगत्य स्वीकार करने के पहले ही तर्क करने से उससे विश्रृंखला की सृष्टि होती है। हम लोगों के मार्ग के मतानुसार जो समाज व्यवस्था यौक्तिकता के ऊपर प्रतिष्ठित है -

अन्ध कुसंस्कार के ऊपर नहीं, उस तरह की समाज व्यवस्था में विश्रृंखला प्रवेश कर मानव समाज की निरापत्ता को विघ्नित नहीं कर सकता।

(3) शान्ति

मानसिक साम्यावस्था को ही शान्ति कहते हैं। सुतरां देखना होगा कि किन कारणों से मानसिक साम्य आता है, किन-किन कारणों से वह विदूरित होता है। और आध्यात्मिक साधना मानसिक साम्यावस्था लाती है और कुसंस्कार में विश्वास इस साम्यावस्था को नष्ट कर देता है। इसलिए मानसिक शान्ति लाने के लिए प्रयोजन है एक तरफ आध्यात्मिक साधना का अनुशीलन और साथ-साथ कुसंस्कार के विरुद्ध संग्राम।

आध्यात्मिक साधना

मनुष्य की सबसे बड़ी आकांक्षा है दुःख के बन्धन से अव्याहति लाभ। यह आकांक्षा पूर्ण न होने तक मन में शांति नहीं आती। दुख से यह अव्याहति ही निवृत्ति है। निवृत्ति दो तरह की है- एक को बोलते हैं, निवृत्ति, दूसरे को आत्यन्तिकी निवृत्ति। जो वस्त इस निवृत्ति लाभ में सहायता करती है, वह है 'अर्थ'। किन्तु यह अर्थ पूर्णरुपेण एक स्थूल वस्तु है और इसलिए इससे केवल स्थूल तथा सामयिक तृप्ति हो सकती है। दुख से चिरन्तन अव्याहति पाने के लिए परमार्थ ही एकमात्र उपाय है। परमार्थ दुःख से केवल सामयिक अव्याहति ही प्रदान नहीं करता, स्थायी अव्याहति प्रदान करता है।

केवल आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक - समस्त प्रकार के दुख से आत्यन्तिकी निवृत्ति ला देता है परमार्थ। यह परमार्थ प्राप्ति केवल आध्यात्मिक साधना के द्वारा ही सम्भव है। इसलिए शान्ति के लिए चाहिए मानसिक साम्य और मानसिक साम्यावस्था लाभ के लिए चाहिए सर्व प्रकार के दुख

से आत्यन्तिकी निवृत्ति। यह आत्यन्तिकी निवृत्ति एकमात्र परमार्थ से प्राप्त होती है और परमार्थ केवल आध्यात्मिक साधना के माध्यम से ही लाभ करना सम्भव है। आनन्दमार्ग में इसलिए पाँच वर्ष के उम्र से ही आध्यात्मिक साधना की दीक्षा दी जाती है। वयः वृद्धि के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना में भी अग्रगति आती है। इससे केवल उसका मानसिक विकास ही नहीं होता, शारीरिक विकास भी होता है। आनन्द मार्ग की आध्यात्मिक साधना मनुष्य को संसार त्याग की शिक्षा नहीं देती है वरन् स्थूल, सूक्ष्म और कारण यावतीय सम्पत्ति की यथायथ व्यवहार की ही शिक्षा देती है। आनन्द मार्ग का साधना क्रम है एक सुश्रृंखल और विज्ञान सम्मत पद्धति, जिसकी सहायता से दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रगति लाकर मन का स्थायी साम्य तथा शास्वती शान्ति लाभ किया जाता है।

कुसंस्कार के विरुद्ध संग्राम

विषय के स्वरूप प्राप्त करना मन का स्वभाव है। सामाजिक, मानसिक या धर्मीय क्षेत्र का कुसंस्कार मन को ऐसा प्रभावित कर देता है, जिससे मन में नाना प्रकार की दुश्चिन्ता प्रवेश कर जाती है। फलस्वरुप मनुष्य को क्लेश में पड़ना पड़ता है। कुसंस्कार विश्वासी मनुष्य का मानसिक साम्य विनष्ट हो जाता है। फलस्वरूप मनुष्य केवल मानसिक शान्ति ही नहीं खोता है, वह ऐसा कुछ कर बैठता है जो उसके लिए भी क्षतिकर हो जाता है तथा इससे उसका कुसंस्कार और भी वृद्धि पाता है। सामान्य घटना में वह अनेक दुर्लक्षण देखने लगता है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। इसी भाव से ही मनुष्य भूतप्रेत देखता है, जो उसके स्वयं मानस सृष्ट छोड़कर और कुछ नहीं है। यदि ये सब मनुष्य साहस और मनःशक्ति से भूत को पकड़ने की चेष्टा करते तो जल्द ही 'कुछ नहीं' से कुछ विश्वास करने की भूल समझ जाते। इस तरह का कुसंस्कार सभी क्षेत्र में परिव्याप्त है। सामाजिक क्षेत्र में कुसंस्कार का अभाव नहीं है। डाकिनीतन्त्र, वैधव्य प्रभृति केवल कुसंस्कार के कारण ही समाज का अभिशाप कहकर के रूप में होता है। मानसिक क्षेत्र में भूतप्रेत के

समान नाना प्रकार का कुसंस्कार है। इसके अतिरिक्तश्राद्ध सम्पर्कित कुसंस्कार भविष्यत् प्रजन्म के ऊपर प्रभाव विस्तार करना है। धर्म के क्षेत्र में स्वर्ग-नरक का कुसंस्कार यज्ञ मनुष्य को अनेक कुछ करने को बाध्य करता है। ये सब कुसंस्कार मनुष्य का मानसिक साम्य नष्ट कर देता है और समाज जीवन में विरोध और दुर्भावना सृष्ट करता है। समाज में शान्ति रक्षा के लिए कुसंस्कार के विरुद्ध लड़ाई करना एकदम जरूरी है।

आनन्द मार्ग इस तरह के सभी प्रकार के कुसंस्कार से मुक्त है। सामाजिक क्षेत्र में डाकिनी तन्त्र कुछ कुसंस्कारी मनुष्य के मन की सृष्टि है। आनन्द मार्ग में विधवाओं को अविवाहित महिलाओं की तरह समाज में स्थान दिया जाता है। उनके पोशाक-परिच्छद आहार-व्यवहार वा जीवन यात्रा के ऊपर किसी कुसंस्कार भित्तिक बाध्य बाधकता आरोप नहीं किया जाता है या किसी सामाजिक अनुष्ठान मे योग देने में उनको निषेधित नहीं किया जाता है।

भूत-प्रेत श्राद्धादि सम्पर्कित किसी प्रकार के कुसंस्कार का स्थान हम लोगों के मार्ग में नहीं है। भूत-प्रेत का विश्वास एक सम्पूर्ण काल्पनिक बात है। मृत्यु के पश्चात प्रयात व्यष्टि की आत्मा को वैतरणी पार कराने के लिए ब्राह्मण को दान-दक्षिणा प्रदान करना होगा - यह भी कुसंस्कार छोड़कर और कुछ नहीं है। आनन्द मार्ग में इन सब अयौक्तिक अन्ध विश्वास का कोई स्थान नहीं है।

धर्म के क्षेत्र में स्वर्ग-नरक का विश्वास, देव-देवी के प्रति भय, मनुष्य के मन को अवदमित कर रखता है। और मानसिक शान्ति नष्ट कर देता है। प्रायः ये सब संस्कार जनित भय, मनुष्य के मन में अवाञ्छित प्रतिक्रिया सृष्टि करता है और उसकी मानसिक शान्ति नष्ट कर देता है। आनन्द मार्ग की आध्यात्मिक साधना सम्पूर्णतः युक्ति के ऊपर प्रतिष्ठित है। आनन्द मार्ग का

सुशृङ्खला और विज्ञान भित्तिक साधना पद्धति में कुसंस्कार और अन्धविश्वास का कोई स्थान नहीं है।

इस तरह देखा जाता है कि आदर्श समाज तभी गठित होता है जब समाज में एकता, सामाजिक निरापता और शान्ति प्रतिष्ठित होती है।

इस तरह से समाज निर्माण के उद्देश्य से ही आनन्द मार्ग ने साधारण आदर्श के रूप में ब्रह्म को ग्रहण किया है। सामाजिक एकता लाने के लिए हम लोगों के मार्ग में जाति भेद हीन समाज-व्यवस्था का प्रवर्तन किया गया है। चरमदण्ड को यहाँ निषिद्ध किया गया है। जाति, वर्ण, सम्प्रदाय निर्विशेष में यहाँ सभी सामाजिक अनुष्ठान में भाग लेते हैं। वृत्तिगत भेद, स्त्री-पुरुषगत भेद वा जातिगत भेद को केन्द्र कर किसी सामाजिक अविचार को यहाँ प्रश्रय नहीं दिया जाता।

इसके बाद समस्त प्रकार के सामाजिक मानसिक और आध्यात्मिक कुसंस्कार वर्जित हैं। सुश्रृंखल विज्ञान सम्मत आध्यात्मिक साधना पद्धति को प्रवर्तन कर तथा शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक प्रगति तथा शास्वती शान्ति प्रतिष्ठा के उपयोगी समाज विधि की रचना कर आनन्द मार्ग ने आदर्श समाज गढ़ने का वलिष्ठ पदक्षेप किया है।

(तात्विक प्रवेशिका)

(इस पुस्तक में प्रकाशित तात्विक प्रवेशिका के दो ही प्रबन्ध मूल अंग्रेजी से अनूदित)

समाज चक्र में सद्विप्र का स्थान

आदिम मनुष्य थे व्यष्टि केन्द्रिक। उन लोगों का कोई समाज नहीं था। ऐसा कि परिवार के सम्बन्ध में कोई धारणा ही नहीं थी। जीवन था बुद्धि-विवेक-वर्जित पशु के समान। मनुष्य प्रकृति के मुक्त क्रोड़ में वास करने को पसन्द करते। दैहिक शक्ति थी उन लोगों का एक मात्र अवलम्बन। दैहिक बल से बली लागों के पास दुर्बलों को आत्म समर्पण करना पड़ता था। दुर्बलों के ऊपर प्रबल लोगों का एकच्छत्र आधिपत्य चलता। जो हो, उस समय सभी दैहिक परिश्रम करते थे। सञ्चय मनोवृत्ति या बौद्धिक शोषण उस युग में देखा नहीं गया। जीवन यापन में पशु भाव का आधिक्य रहने पर भी पाशविकता का अभिप्रकाश नहीं था।

कायिक परिश्रम के द्वारा जीविका निर्वाह जो लोग करते हैं, यदि उन्हें शुद्र की संज्ञा दी जाय, तब आदिम-युग के उस स्तर को बोल सकते हैं - शुद्र युग-कारण कि सबों को उस समय कायिक परिश्रम करना पड़ता था। दैहिक शक्ति के ऊपर इस निर्भरशीलता के फलस्वरूप क्रमशः कुछ मनुष्य पेशी के बल पर अन्यान्यों पर नेतृत्व करने लगे। यही हुए शुद्र नेता।

इसके साथ आयी परिवार प्रथा। और कुछ आगे जो नेतृत्व की बात कही गई है जो एक काल में पेशी के बल के ऊपर निर्भरशील थे, वह पिता से पुत्र अथवा माता से कन्या तक बरता गया। यह अंशतः भय और अर्जित क्षमता के कारण हुआ तथा अंशतः वंशधारागत कौलिन्य के कारण।

शक्तिमान की शक्ति बचाकर रखने के लिए आवश्यक है पार्श्ववर्ती शक्ति का सहाय्य। साधारणतः पार्श्ववर्ती शक्ति एक ही वंशधारा के अन्तर्गत थी, अथवा वैवाहिक सूत्र में आबद्ध थी।

क्रमशः वे नेतागणों ने दैहिक शक्ति की सहायता से एक सूत्रबद्ध गोष्ठी तैयार की। इस तरह से तैयार हुई क्षत्रीय श्रेणी। जिस युग में शासन की क्षमता और अस्त्र की प्रधानता अग्रगण्य हो उद्ड्गी, उस युग को बोल सकते हैं क्षात्र-युग। उस युग के नेता लोग थे दारुण शक्तिशाली। व्यष्टिगत शौर्यवीर्य था उनलोगों का अवलम्बन। बुद्धि का व्यवहार वे सब कम ही करते, या करते ही नहीं ऐसा कहा जा सकता है।

बुद्धि और नैपुण्य के विकास के साथ-साथ दैहिक-मानसिक संघर्ष के फल-स्वरूप बुद्धि का विकास शुरू हुआ और दैहिक शक्ति ने अपने पूर्व गौरव को खो दिया। कारण बुद्धि की आवश्यकता क्रमशः बढ़ती गई। अस्त्र प्रयोग के कौशल को उन्नत करने की प्रयोजनीयता देखी गई और इस कारण से दैहिक शक्ति से बलशाली एक वीर को भी अस्त्र के व्यवहार और युद्ध कौशल सीखने के लिए ऐसे एक व्यक्ति के चरण के नीचे बैठना पड़ा जो दैहिक शक्ति से एकदम शक्तिशाली नहीं थे। जिस किसी

प्राचीन सभ्यता के पुरान आदि की ओर देखने से ही ऐसे अनेक उदाहरण ही मिलेंगे। यहाँ उस युग के वीर को विशेष अस्त्र शिक्षा के लिए कोई न कोई गुरु के शरणापन्न होना पड़ा था। परवर्ती काल में मात्र अस्त्र शिक्षा के ही मध्य वह आवद्ध न रह शासन व्यवस्था के आनुषांगिक प्रयोजनीय दिशाओं में भी जैसे समर कौशल, चिकित्सा विज्ञान, सांगठनिक विभिन्न धारा और प्रशासन व्यवस्था, आदि इन सब शिक्षा के अन्तर्भुक्त हुआ। इस भाव से दिन-दिन उच्चतर बौद्धिकता के ऊपर निर्भरशीलता बढ़ गई।

धीरे-धीरे प्रकृत क्षमता बुद्धजीवियों के पास चली गई। बुद्धिजीवी इस शब्द से ही समझ में आता है कि बुद्धि ही उन लोगों के अस्तित्व रक्षा का एकमात्र अवलम्बन था। ये बुद्धिजीवी स्वयं किसी प्रकार का कायिक परिश्रम नहीं करते थे, इसलिए वे समाज के अन्याय लोगों की कर्म शक्ति का शोषण कर परजीवी की तरह जीवन यापन करने लगे। समाज में इस

बौद्धिक परजीवियों के प्राधान्य वाले युग को ही बोला जा सकता है - 'विप्र युग'।

यद्यपि विप्र लोग अपनी विशेष बुद्धि लगाकर समाज के पुरोभाग में आ गये, तभी भी क्षत्रियों के समान वंशगत एकाधिपत्य बचाकर रखना बहुत कष्ट साध्य हुआ : मुट्ठी भर लोगों का यह एकाधिपत्य बचाकर रखने के लिये वे लोग सक्रिय हो गए। नाना प्रकार के कुसंस्कार, आचार अनुष्ठान, विश्वास-अविश्वास, इतना ही नहीं अयौक्तिक भावधारा (जैसे हिन्दू समाज की जात-पाँत की प्रथा) आरोप कर वे लोग मनुष्य के अधिकांश भाग के बौद्धिक शक्ति के अर्जन के पथ को बन्द कर दिया था। मध्य युग में विश्व के वृहत्तर अंश में मानव समाज की यही अवस्था थी।

विशेष एक श्रेणी के अव्याहत शोषण के फलस्वरूप भोग्यपण्य का संग्रह और हस्तान्तरण की प्रयोजनीयता दिखाई

दी। इसके अलावे उद्धृत्त अञ्चल से अभावग्रस्त अञ्चल में खाद्य और अन्यान्य प्रयोजनीय वस्तुओं की आपूर्ति की प्रयोजनीयता भी भीषण भाव से अनुभूत हुआ। ऐसा हुआ कि गोष्ठीद्वन्द्व के क्षेत्र में भी एक गोष्ठी की अपेक्षा अन्य गोष्ठी की सम्पत्ति का तारतम्य प्राधान्य पाने लगा। सम्पत्ति का यह गुरुत्व, मात्र उत्पादक लोग ही समझे थे, यही नहीं, सम्पत्ति व्यवहार के विभिन्न पर्याय में जो लोग इस सम्पत्ति का लेनदेन करते उन्होंने भी उपलब्धि की थी।

यही हुए वैश्य। इन लोगों की उद्भावनी क्षमता और सामग्रिक उत्पादन अधिकतर प्राधान्य प्राप्त करने लगे और एक ऐसा युग आया जब यह व्यापारादि जीवन में अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त करने लगा। इस तरह वैश्य लोग जब अधिकतर अग्रणी भूमिका में आ गये वैश्य श्रेणी के उस आधिपत्य के युग को ही कहा जाता है 'वैश्य युग'। व्यष्टि तांत्रिकता के अवाध सञ्चय की प्रवणता से पूँजीवाद का उद्भव हुआ। जो व्यष्टिगत

भाव से शोषण में उत्साही थे उन्हीं कतिपय पूँजीपतियों ने उत्पादन के उपाय - समूह को दखल कर लिया। कहा जा सकता है, इसी अवस्था से ही संग्रह की मनोवृत्ति, प्रबल हो उठी।

सञ्चय की इस लालसा ने मानव जाति को सामयिक भाव से शोषण करने में पूँजीपति लोग प्रोत्साहित किया। और जो इस भाव से शोषण करने लगे वे स्वयं एक श्रेणी विशेष में चिह्नित हो गए। शोषण की लालसा और सञ्चय की प्रतियोगिता में सभी टिक नहीं पाये। शेष पर्यन्त पूँजी चली गई कतिपय लोगों के हाथों में और उस पूँजी के जोर से साधारण भाव से समाज के ऊपर एक विशेष भाव से अर्थनैतिक व्यवस्था के ऊपर आधिपत्य विस्तार कर लिया।

उन्होंने समाज के कुछ अंश को इस तरह धोखा दिया कि वे सम्पत्ति के भागीदार होंगे। शक्ति के अभाव में अधिकांश भाग अवहेलित और वञ्चित का जीवन यापन करने को बाध्य हुए।

पूँजीवादियों के साथ प्रतियोगिता मे वे हार गये। समाज के यही अवहेलित वञ्चित और शोषित जन अन्त में पूँजीपतियों के क्रीतदास के रूप में परिणत हो गए। क्रीतदास कहते हैं इस कारण से क्योंकि जीवन धारण के लिए पूँजीपतियों के

सेवादास होना छोड़कर उनके सामने अन्य कोई उपाय न रहा।

आगे ही कहा गया है कि जो कायिक परिश्रम करते हैं अथवा जीवन धारण के लिये जिन्हें कठोर परिश्रम करना पड़ता है उसे शुद्र कहा जाता है। वैश्य युग भी एक ऐसा युग है जब समाज का वृहत्तर अंश इस तरह के शूद्र में परिणत हो जाता है। किन्तु उनके मन में चलता रहता है एक आभ्यन्तरीण संघर्ष और इस हेतु सामाजिक मनस्तत्व स्वाभाविक गतिधारा से आगे जाना चाहता है, उसी कारण असन्तोष और विक्षोभ क्रमशः पहाड़ के समान हो उठता है। और शोषण की जाँता-चक्की के विरुद्ध

संघबद्ध होने के लिए तथा सामने खड़े होने के लिए यह असन्तोष और विक्षोभ की अवस्था अत्यन्त जरूरी हो जाती है। इसको कहा जा सकता है 'शुद्र विप्लव'। इस शूद्र विप्लव का नेतृत्व किन्तु उनके हाथ में रहता है जो दैहिक मानसिक शक्ति से ऐसे बलवान होते हैं जो अपनी उस शक्ति की क्षमता के जोर से पूँजीवादी समाज व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में समर्थ होते हैं। प्रकृत पक्ष में ये भी क्षत्रीय हैं। अर्थात् एक विश्रृंखल और विपर्यकर परिस्थिति के बाद शुद्र युग से क्षात्रयुग, तत्पश्चात विप्रयुग इसी भाव से समाज चक्र घूमता चलता है।

सभ्यता के इस विवर्तन में एक युग क्रमशः रूपान्तरित हो जाता है : दिखायी पड़ता है नया युग। इस क्रम विवर्तन को कहा जा सकता है क्रांति (evolution)। एक युग का अन्त और दूसरे युग का आरम्भ - इस मध्यवर्ती अवस्था को कहा जा सकता है युग संक्रान्ति (transitional age)। शूद्र युग से शुरू कर एक के बाद दूसरा, चार युग जब अतिक्रान्त हो जाता है

अर्थात् समाजचक्र जब सम्पूर्ण भाव से एक बार घूम जाता है, उसी अवस्था को कहते हैं "परिक्रान्ति"। कभी-कभी विशेष कोई गोष्ठी विपरीत भावात्मक भावधारा के प्रभाव में दैहिक व मानसिक शक्ति सम्पात के द्वारा समाज चक्र को पीछे की ओर घुमा सकती है। यह सभ्यता के क्रम विवर्तन का विरोधी है। जिसको बोला जाता है 'विक्रांति' (counter evolution)। किन्तु खूब अल्प समय के मध्य प्रचण्ड शक्ति संपात की सहायता से अथवा प्रचण्ड राजनैतिक चाप सृष्टि कर यदि इस समाज चक्र को पीछे की ओर घुमा दिया जाय, तब उसे कहा जायेगा 'प्रति विप्लव' (counter revolution)। यह ठीक ब्रह्म चक्र में ऋणात्मक प्रतिसञ्चर की

कणिका में प्रउत तरह है।

और सभ्यता की प्रगति भी आगे की ओर बढ़ चलती है - इसे कहते हैं ब्रह्म चक्र में सामूहिक भाव से पुरुषोत्तम की ओर

आगे चलने के पथ में तथा यथाक्रम में अवस्थान बिन्दु तथा सम्मुख गति।

भूमा मन के कल्पना प्रवाह में जगत एक परिवर्तनशील सत्ता है। यह गति अनन्त की ओर प्रवाहित होकर चली है। यह प्रकृति का विधान है तथा जीवन का का नियम। स्थविरता का अर्थ है मृत्यु। अतएव कोई शक्ति समाज चक्र के इस परिघूर्णन को समाज के विवर्तन के इस गति को रुद्ध नहीं कर सकती है।

वाह्यिक अथवा आभ्यन्तरीण कोई शक्ति भी क्यों ने हो वह समाज चक्र को सामने अथवा पीछे की ओर घुमा सकती है, समाजगति को स्तब्ध नहीं कर सकती। अतएव प्रगतिशील मानवजाति के पुरातन जीर्ण कङ्काल का परित्याग करना ही होगा। समग्र मानवता के मठलार्थ प्रगति की गति में द्रुति लानी होगी।

यम नियम में प्रतिष्ठित होकर सुसम्बद्ध चिन्ताधारा और सुपरिकल्पित कार्यप्रणाली की भित्ति से मानव जाति के दैहिक, मानसिक उत्तरण के लिये जो सर्वदा सचेष्ट हैं, वही सब आध्यात्मिक विप्लवी ही है- 'सद्विप्र'।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य है 'यम साधना'। मन वाक्य और कार्य के द्वारा निरीह किसी जीव को आघात न करने का नाम ही 'अहिंसा' है। दूसरे के प्रकृत सहाय्य के उद्देश्य से मन और वाक्य के यथायथ व्यवहार का ही नाम है 'सत्य'। चोरी न करने के नाम को ही 'अस्तेय' कहते हैं। तब मात्र वाह्यिक चोरी ही इसकी परिधि में आयेगी सो नहीं मानसिक भाव से चोरी अर्थात् चौर्य मनोवृत्ति भी इसके मध्य पड़ेगी। मन ही सभी कार्यों का उत्स है। अतएव जो अपना नहीं है उसको लेने के मनोभाव का त्याग करना ही प्रकृत पक्ष में अस्तेय है। देह रक्षा के अतिरिक्त किसी भोग्य वस्तु को ग्रहण न करने की प्रवणता ही 'अपरिग्रह' है। अणु मन जब भूमा मन की इच्छा से अनुनित होता

है, पार्थिव तथा मानसिक सर्व सत्ता में उनकी उपस्थिति होती है तथा कर्तृत्व की भावना से भावित होता है अणु मन की उसी अवस्था को कहते हैं ब्रह्मचर्य।

नियम का पाँच अंग है - शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। शरीर और मन दोनों की पवित्रता रक्षा ही 'शौच' है। दूसरे के मठल के लिए काम करना, सेवा-परायणता तथा कर्त्तव्य कर्म में नियोजित रहना इसी से मानसिक पवित्रता आती है। 'सन्तोष' कहने से परितृप्ति समझा जाता है। अपने दैहिक और मानसिक श्रम की फलश्रुति के विद्वेषहीन मनोभाव लेकर और प्रतिवाद न कर, ग्रहण करने की इच्छा ही सन्तोष है। लक्ष्य तक पहुंचने के लिए शारीरिक समस्त प्रकार की असुविधा को वरण कर लेना ही तपः है। प्रकृत अर्थ हृदयंगम कर शास्त्र पाठ करना तथा ज्ञान बढ़ाने की प्रचेष्टा ही स्वाध्याय है। समग्र विश्व ही परम पुरुष द्वारा परिचालित है। उनकी विशेष इच्छा के व्यतिरेक में कोई कुछ नहीं करता है और न कर सकता है।

प्रत्येक सत्ता ही सर्व शक्तिमान के हाथ की कठपुतली है तथा उस दिव्य ज्योति का स्फुलिंग मात्र हैं इस भाव की स्वगत भावना ही 'ईश्वर प्रणिधान' है। सम्पत्ति अथवा विपत्ति में सुख की क्षणिक झलक से अथवा दुख के मध्य किसी अवस्था में क्यों न रहे उनके प्रति गम्भीर आस्था ही 'ईश्वर प्रणिधान है'।

स्वाभाविक जीवन-यापन के क्षेत्र में भी आध्यात्मिक आचरण में स्वाभाविक रूप से जो उपरिउक्त दश अनुशासन में प्रतिष्ठित हैं, उन्हें ही 'सद्विप्र' कहते हैं।

नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति के अधिकारी इन सद्वित्रों को समाज के प्रति मौलिक और अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण कर्त्तव्य सम्पादन करना होगा।

समाज चक्र के इस परिघूर्णन में एक विशेष युग में उसके परवर्ती युग के आने के पहले एक विशेष श्रेणी का आधिपत्य

रहता है, गुरुत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यही विशेष श्रेणी जब राजनैतिक क्षमता में रहते हैं उनके द्वारा समाज में शोषण चलाने की सामूहिक सम्भावना रह जाती है। इतिहास की शिक्षा यही है कि शोषण की सम्भावना ही सिर्फ नहीं युग-युग में इस शोषण का पुनराविर्भाव भी हुआ है। अभी सद्विप्र का कर्तव्य होगा समाज में जिस श्रेणी का आधिपत्य रहेगा, वह श्रेणी जैसे शोषण करने का सुयोग न पाये वह देखना। सभ्यता के विवर्तन के परिघूर्णन में चार श्रेणी (शूद्र अर्थात् जिन्हें केवल कायिक परिश्रम ही करना पड़ता है; क्षत्रिय अर्थात् जो वीर मनोभावापन्न हैं; विप्र अर्थात् जो बुद्धिजीवी हैं तथा पूँजीपति श्रेणी) की अवस्थिति सुनिद्दिष्ट है। एक-एक श्रेणी एक-एक युग में आधिपत्य विस्तार करता है और समाज चक्र के घूर्णन के कारण से क्रमशः उसी श्रेणी का आधिपत्य कम हो जाने से परवर्ती श्रेणी का आधिपत्य प्रतिष्ठित होता है। इसी भाव से समाजचक्र घुमता चलता है।

जीवन गतिशील है और समाजचक्र भी विरामहीन भाव से घूमता चलता है। समाज चक्र के इस घूमने की क्रिया को किसी से भी स्तब्ध नहीं किया जा सकता। कारण है स्थविरता का दूसरा नाम है मृत्यु। इसलिए सब समय ख्याल रखेंगे कि जो श्रेणी आधिपत्य में रहे वे शोषण का कोई सुयोग न पाये। जिस मूहूर्त में एक श्रेणी शोषक की भूमिका में अवतीर्ण होता है, उसी मुहूर्त से संख्या-गरिष्ठ के जीवन दुर्विसह हो उठते हैं। संख्या-गरिष्ठ के दुर्भाग के विनिमय में कतिपय मनुष्य सुख के स्वर्ग मे विचरण करते हैं।

सिर्फ वही नहीं समाज में जब इस प्रकार का शोषण चलता है तब कतिपय शोषक और संख्यागरिष्ठ शोषित दोनों का अधःपतन होता है। कतिपय शोषक का अधःपतन होता है - कारण वे लोग अत्यधिक जागतिक भोग सुख में निमज्जित होते हैं और जिस कारण जागतिक समस्या के समाधान के लिए संख्या गरिष्ठ की समस्त कर्म शक्ति व्ययित हो जाती है, उस

कारण से वे अपना उत्तरण नहीं करा सकते। मानस भौतिक (psycho-physical) समान्तरालता की रक्षा के लिए सदा नियोजित उनके मानसिक तरंग दिन प्रतिदिन स्थूलतर होता जाता है। इस कारण से शासक और शासित उभय पक्ष के जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति विधान करने से किसी का समाज के दूसरों के ऊपर शोषण करने का कोई किसी प्रकार का सुयोग देना नहीं चलेगा।

सद्वित्र निष्क्रिय साक्षी गोपाल नहीं है। कोई व्यष्टि अथवा श्रेणी जिससे अन्य के ऊपर शोषण न कर पाये इसलिए सद्विप्र सदा कर्म तत्पर रहेंगे। इस कारण से सद्वित्रों को हो सकता है स्थूल शक्ति सम्प्रयोग भी करना पड़े। कारण उन्हें लड़ना होगा उसी शक्ति केन्द्र के विरुद्ध जो शोषक की भूमिका में अवतीर्ण होते चले आये हैं। जिस क्षेत्र में क्षत्रिय श्रेणी शोषक हो उठा है, इस क्षेत्र में सद्वित्रों को स्थूल शक्ति की सहायता लेनी पड़ सकती है। विप्र युग में जब विप्र लोग शोषण के माध्यम से अपना

आधिपत्य विस्तार करते चले हैं, तब विप्लव लाना होगा बौद्धिक जगत् में और जिस कारण से गणतान्त्रिक संरचना वैश्यों की पूँजी का पहाड़ सृष्टि करने में सहायता करता है। इसलिए गणतन्त्र की सहायता से वैश्य श्रेणी का शासन चलता है।

और इसलिए वैश्य शोषण के युग में सद्द्वित्रों के निर्वाचन में अंश ग्रहण कर विजयी होने का कौशल अर्जन करने की प्रयोजनीयता भी देखा जा सकता है।

(आइडिया एंड आइडियोलोजी)

(मूल अंग्रेजी से अनूदित)

विश्व भ्रातृत्व

आध्यात्मिकता कोई भित्तिहीन कल्पनाविलास (utopian ideal) नहीं है। आध्यात्मिकता की हम लोग कठोर वास्तव दैनन्दिन जीवन में अनुशीलन और उपलब्धि कर सकते हैं। यह आध्यात्मिकता है मानव मन का विवर्तन तथा सर्वोच्च स्तर में उत्तरण का deviation नामान्तर इसके साथ कुसंस्कार और नैराश्यवाद का कोई सम्पर्क नहीं है। जो समस्त विच्छिन्नतावादी प्रवणता वा क्षुद्रगोष्ठी केन्द्रिक भावना-चिन्ता मनुष्य के मन की संकीर्णता के श्रृंखल में आवद्ध करता है उसके साथ आध्यत्मिकता का कोई सम्पर्क नहीं है। उन सब भाव जड़ता को एकदम उत्साहित करना उचित नहीं है। जो मन को प्रसारित करे और ऐक्य की भावना जगावे वही एकमात्र ग्रहण-योग्य है। आध्यात्मिकता विश्व भ्रातृत्व की बात बोलती है।

वर्तमान में नाना प्रकार की विच्छिन्नतावादी प्रवणता ने अखण्ड मानवता को अनेक युद्धमान गोष्ठियों में भी विभक्त कर दिया है। आध्यात्मिकता मनुष्य के मन में चेतना लायेगी और परस्पर को प्रीति के बन्धन में आबद्ध करेगी। आध्यात्मिकता का आवेदन होगा मनस्तात्विक और युक्तिपूर्ण। यह आवेदन मनुष्य के हृदय को गम्भीर भाव से स्पर्श करेगा मनुष्य युक्ति का पथ पकड़कर भूमा सत्ता के साथ उनकी आत्मीयता का सम्पर्क समझ लेगा उपलब्धि करेगा-उस परम प्रेममय सत्ता ने किस तरह अपनी अनन्त करुणाधारा से सबको आप्लुत कर रखा है। मनुष्य जहाँ से आया है जो उसका परम लक्ष्य है – उस परम सत्ता को पाने के लिए आध्यात्मिकता मनुष्य को परिचालित करेगी। वही चरम व परम आदर्श है भूमा आदर्श स्थान-काल-पात्र के उर्ध्व जिसका स्थान है। यह आदर्श चरम है तथा आपेक्षिकता के वहिर्भूत है। यह सत्ता, अनादि से अनन्त काल पर्यन्त अपने गौरव में भास्वर मनुष्य अथवा उसकी अपेक्षा अनुन्नत, जिस किसी भी जीव के पक्ष में वह प्रोज्ज्वल चिर भास्वर सत्ता है।

केवल यही भूमा आदर्श ही मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँध सकता है। मानव जाति के चतुष्पार्श्वस्थ विच्छिन्नतावादी प्रवणता के संकीर्ण सीमाद्ध सीमारेखा को दूर कर सर्व प्रकार के बन्धन को चूर्ण-विचूर्ण कर मानव जाति को सामाग्रिक भाव से संहत और शक्तिमान उन्नत कर सकता है।

जो सब चिन्ताधाराएँ संकीर्ण भावावेग को बढ़ा देती हैं दृढ़ भाव से उनका मुकाबला करना आवश्यक है। अवश्य इसके माने यह नहीं कि मनुष्य के सहजात भावावेग ऐतिह्य और अभ्यास-समूह के ऊपर आघात करना होगा क्योंकि ये सब कोई भी विश्व की सामूहिक प्रगति के पथ में बाधा नहीं हैं। बाधा हैं वे सब कृत्रिक भावावेग जो सब किसी भी सामाजिक प्रगति के साथ संगति रक्षा नहीं करते हैं। जैसे समस्त देश के मनुष्यों को एक ही पोशाक पहननी होगी इस मर्म में कोई आंदोलन करना तो बहुत ही हास्यास्पद और अयौक्तिक कार्य होगा। क्योंकि विभिन्न जनगोष्ठि परिवेश या कार्य करने की उपयोगिता का विचार कर

भिन्न-भिन्न प्रकार के पोशाकों का निर्वाचन करते हैं। इसके अलावे पोशाक भिन्नता विश्व भ्रातृत्व पक्ष में विघ्न स्वरूप है।

ऐसा सोचने का कोई कारण ही नहीं है। यही स्वाभाविक कारण है कि विभिन्न अञ्चल के ऐतिह्य और जनगोष्ठीगत आचार व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में उन्हीं सब इलाकों का आञ्चलिक वैशिष्ट्यगत पार्थक्य आ पड़ता है। वास्तव सम्मत पथ है इस पार्थक्य को निर्मूल करने की अपचेष्टा को छोड़ कर समाज की उन्नति के स्वार्थ में ही इन सबको मान लेना और उत्साहित करना। दूसरी दिशा में किस परिस्थिति में विश्वकतावादी भावधारा के पथ में यह सब मत और विश्वास बाधा स्वरूप उनके साथ नहीं चलेंगे। प्रतिमुहूर्त जो कोई मानवतावादी मनुष्य इस लक्ष्य को सामने रखकर चलेंगे जिससे सामूहिक मानविक दृष्टिभंग देकर समाज की समस्या का समाधान कर विश्वकतावाद की भावना को ही पुष्ट किया जाय।

इस आपेक्षिक जगत में निम्नलिखित मौलिक समस्यावली का समाधान अत्यावश्यक है :

(1) जीवन सम्पर्क में साधारण दर्शन PNG PER

(2) साधारण संविधानिक संरचना।

(3) साधारण दण्ड विधि।

(4) जीवन धारण के लिए सर्व निम्न आवश्यकताओं (उत्पादन, आपूर्ति, और क्रय क्षमता) का परिपूरण।

व्यष्टि मनुष्य की प्रगति शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक इन तीन स्तरों के क्रम विवर्तन के माध्यम से ही रचित होता है। साधारण दर्शन मानव मन के अभ्रांत विश्लेषण और उस सम्पर्क में सुस्पष्ट धारणा को व्यक्त करेगा। कोई-कोई जड़वादी चिन्ताविद ऐसा मत प्रकाश करते हैं कि आध्यात्मिकता है अलीक कल्पना और जीवन की सुकठोर समस्याओं से बहुत दूर उसका अवस्थान है। फिर अन्य कुछ

चिन्ताविदों का वक्तव्य है- श्रमजीवी मनुष्य को मूर्ख बनाने का चमत्कार और सुचतुर कौशल है आध्यात्मिकता। किन्तु पूर्वोक्त युक्तिपूर्ण आलोचना के माध्यम से यह बात प्रमाणित होती है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आध्यात्मिकता को छोड़कर मनुष्य को एक पाँव उठाने का उपाय नहीं है।

दूसरी दिशा में एक श्रेणी के मनुष्य हैं जो सोचते हैं- धर्म है एकान्त व्यष्टिगत कार्य। ये भी धर्म को संकीर्ण दृष्टि को देखते हैं। यह बात स्वीकार करनी होगी। धर्म भूमा के अभिमुख की ओर मनुष्य को परिचालित कर मनुष्य के मन में विश्वकतावादी आदर्श का बोध जगा देता है। समस्त मनुष्य जाति को ऐक्य के बन्धन में आबद्ध करना है धर्म। इसके बाद आध्यात्मिकता मनुष्य के लिए प्रबन्ध करती है एक ऐसी शक्ति का जिसके साथ अन्य किसी शक्ति की तुलना नहीं हो सकती।

इस कारण सम सामयिक भौतिक, मनस्तात्विक, समाज दार्शनिक समस्याओं के समाधान के लिए एक ऐसे दर्शन की प्रयोजनीयता अनुभूत होती है जिसकी भित्ति होगी आध्यात्मिकता। अर्थात् मानव प्रगति के साथ अन्वित आध्यात्मिक मानसिक और भौतिक तीन स्तरों में सक्रिय एक ऐसा युक्तिपूर्ण सर्वानुस्युत तत्व चाहिए जो समस्त मनुष्य के पास एक साधारण दर्शन के रूप में ग्रहण योग्य हो। यह तत्व होगा सर्वसमय प्रगतिशील स्वभाव का।

वर्तमान समय में जातीयतावाद द्रुत प्रधानता प्राप्त कर रही है। इससे दो विश्व युद्धों में जो भाव प्रकाश हुआ और उसके साथ आजकल विश्व सामाजिक और सांस्कृतिक विमिश्रण जिस भाव से होता जा रहा है उससे विश्व जनीन भावना का आधिपत्य ही सूचित होता है। कौमी स्वार्थवादी लोग अवश्य विच्छिन्नतावादी प्रवणता जगाकर रखने की चेष्टा कर रहे हैं। असल में ये सब कौमी स्वार्थवादी लोग मूलतः आर्थिक और

राजनैतिक मुनाफा की दिशा में दृष्टि रखकर इन सब प्रगति विरोधी क्षतिकारक अपचेष्टाओं में लिप्त रहते हैं। आनन्द का विषय यही है कि इस बाधा को अतिक्रम कर ही मानवता सामाजिक-सांस्कृतिक मिलन के पथ से अग्रसर होती हैं। इस अवस्था में विश्व-संस्कृति के प्रयास को और सशक्त रूप से उत्थान करने की आवश्यकता है - एक साधरण सांवैधानिक संरचना है। विशेष-विशेष क्षेत्र में नियन्त्रण कायम रखने के लिए एक विश्व राष्ट्र रचना करने की प्रयोजनीयता है। जैसे • विश्व की एक सामरिक वाहिनी रखना उचित है। विश्व राष्ट्र के अधीन रहेगा स्वयं शासित युनिट । इसका यह अर्थ नहीं कि जातीयता की भित्ति पर इन सबकी रचना होगी। शिक्षा, खाद्य आपूर्ति, वन्य-नियन्त्रण, पब्लिक सेन्टिमेंट, इन सबों की भित्ति पर इन सब स्वयं शासित युनिटों की रचना करना उचित है। ये सब स्वयंशासित युनिट समूह जागतिक तथा मानसिक स्तर की समस्याओं का समाधान करेंगे। इन समस्त युनिटों की सीमाओं और सम्पर्क की व्यवस्था की उन्नति प्रभृति के साथ सामञ्जस्य रखकर प्रयोजनानुसार परिवर्तित कर चलना होगा।

योगायोग-व्यवस्था की उन्नति विश्व के प्रत्येक दुर्गम कोणों को और निकट ले आता है और पृथ्वी मानों मनुष्य के सामने क्रमशः छोटी होती चली आती है। उन्नत से उन्नत्तर योगायोग व्यवस्था को काम में लगाकर युनिट सब, विराट अञ्चल मिलकर यथेष्ट तत्परता और साफल्य के साथ कार्य करने में सक्षम होंगे। विश्व में योगायोग के माध्यम के तरीके के रूप में एक साधारण भाषा (लिङ्गुआ फ्राङ्का) का रहना जरूरी है। वर्तमान में अंग्रेजी की इस उद्देश्य साधन मे सर्वापेक्षा कार्य-कर भूमिका देखी जाती हैं। इसलिये किसी प्रकार की संकीर्ण राष्ट्रीय भाव प्रवणता लेकर अंग्रेजी की विरोधिता में अवतीर्ण होना, उचित कार्य नहीं कह सकते। तब स्थानीय साहित्य तथा विश्व की सामूहिक बौद्धिक अग्रगति के स्वार्थ में भी आंचलिक भाषाओं को भी समान भाव से उत्साहित करना आवश्यक है। आञ्चलिक भाषा का उन्नयन विश्व भ्रातृत्व की प्रतिष्ठा की सम्भावना को त्वरान्वित कर देता है, यह भूलना नहीं चलेगा।

साधारण दण्ड विधि प्रणयन के लिये प्रयोजनीयता भी है। परिवर्तित परिस्थिति के साथ सामञ्जस्य बनाकर रखने के लिए कानून को प्रगतिशील बनाना जरूरी है। क्योंकि यही स्वाभाविक बात है कि स्थान, काल, पात्र के चिर परिवर्तनशील परिवर्तनशील परिवेश के साथ जो तत्व समान्तरलता बनाकर रख नहीं सकता है वह विस्मृति के गर्भ तल में जाने को बाध्य होगा। इसलिए कानून को देश-काल-पात्र के लिए उपयोगी बनाकर संशोधन कर लेने के अविराम प्रयास से कभी भी हटना उचित नहीं है। विश्व भ्रातृत्व की प्रतिष्ठा के प्रयोजन में इसका विशेष प्रयोजन है।

संश्लिष्ट राष्ट्र के कानून में जो निषिद्ध है वह अपराध है। और पाप और पुण्य चिराचरित देशाचार के साथ सम्पर्कित हैं। आध्यात्मिक ऐतिह्य और देशाचार के साथ सम्पर्कित पाप-पुण्य का इस ध्यान-धारणा और चलति ऐतिह्य कानून के प्रणेतागण

को व्यापक भाव से प्रभावित कर रखता है। इस भाव से अपराध की संज्ञा निर्णय में प्रचलित पाप-पुण्य की धारणा विशेष भाव से गुरुत्वपूर्ण हो उठती है।

अथवा पाप-पुण्य की धारणा विभिन्न देश में विभिन्न तरह की है। इस परिप्रेक्ष्य में विश्व भ्रातृत्व के जो वार्तावह है उन्हें लक्ष्य रखना होगा कि विभिन्न देश में सक्रिय न्याय नीति और कानून के मध्य जो पार्थक्य और वैषम्य है उसमें कमी लायी जाय। अर्थात् पाप-पुण्य की धारणा को आध्यात्मिक देशाचार के वैषम्य से उवार कर उसकी एक विश्व-जनीन धारणा का प्रवर्तन करना होगा। साधारण भाव से जो सब कार्य मनुष्य के जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति में सहायक है, उन सबको 'पुण्य' और जो सब बाधा स्वरूप हों इन सबको 'पाप' - इस मर्म से एक सर्व जनीन धारणा का प्रवर्तन करना होगा।

जीवन-धारण के न्यूनतम प्रयोजनीय द्रव्यों की सहज-प्राप्यता केवल विश्व भ्रातृत्व की प्रतिष्ठा के क्षेत्र में ही नहीं मनुष्य के व्यष्टित्व के विकास और एक गुरुत्वपूर्ण भूमिका ग्रहण करती है। इस समस्या का समाधान करना होगा सामग्रिक रूप से एक ही साथ समग्र पृथ्वी-व्यापी। और इस समाधान को करना होगा कितने ही मौलिक सिद्धान्तों के ऊपर भित्ति करके। प्रत्येक मनुष्य के लिए सर्वनिम्न आवश्यकता की परिपूर्ति की गारण्टी देनी होगी।

खाद्य, वस्त्र, चिकित्सा और वास स्थान सर्वनिम्न इन आवश्यकताओं के सम्पर्क में मनुष्य जब निश्चिन्त होंगे, तभी उसके पक्ष में उद्धृत्त प्राण शक्ति को (वर्तमान समय में सर्व निम्न आवश्यकता मिटाने के लिए मनुष्य की समस्त प्राण शक्ति निःशेष होती है) सूक्ष्म सम्पत्ति अर्थात् मानसिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति अर्जन के लक्ष्य की ओर परिचालित कर

सकेगा। साथ-साथ उन्नत युग में सृष्ट भोग्यपण्य के सुयोग से वह जिससे वञ्चित न हो उस ओर भी ध्यान देना होगा।

कहना जरूरी नहीं है - उपरि-उक्त दायित्व पालन करने में क्रय क्षमता का यथेष्ट उन्नयन करना होगा।

व्यष्टिगत दक्षता और श्रम शक्ति के व्यतिरेक में यदि प्रत्येक मनुष्य को न्यूनतम आवश्यकता-पूर्ति की गारण्टी दी जाय तो व्यष्टि मनुष्य परिश्रम विमुख और आलसी हो सकता है। इसके अलावे यह ध्यान रखना होगा कि सर्वनिम्न आवश्यकता प्रत्येक मनुष्य के क्षेत्र में एक ही है। किन्तु सृष्टि का स्वभाव या नियम है वैचित्र्य। इस ओर चिन्ता करनी होगी कि जिससे समाज की दक्षता और बौद्धिकता के वैचित्र्य को पूर्ण भाव से कार्य में लगाया जाय और मानव प्रगति से प्रतिभार में पूर्ण सफलता लाभ किया जाय उसके लिये सर्वनिम्न आवश्यकता के अतिरिक्त विशेष सुयोग सुविधा की व्यवस्था रखनी होगी। उसके साथ-

साथ यह भी लक्ष्य रखना होगा कि सर्व निम्न पारिश्रमिक के विचार से साधारण श्रमिक जो पावे और एक दक्ष मनुष्य या गुणी व्यक्ति जो प्राप्त करेंगे इन दोनों के बीच के पार्थक्य में कमी लाने का भी अविराम प्रयास रहे। यह कार्य करने में एक साथ दो पदक्षेप उठाने आवश्यक हैं। प्रथमतः युग के साथ संगति रखकर साधारण मनुष्य की सर्व निम्न प्रयोजन की परिधि बढ़ानी होगी।

द्वितीयतः मुट्ठी भर दक्षता सम्पन्न मनुष्य के लिये प्रदत्त विशेष सुयोग सुविधा की परिधि कम कर देना होगा। व्यष्टि मनुष्य की आध्यात्मिक मानसिक और भौतिक अग्रगति को त्वरान्वित करने के लिए सब युग में इस तरह के अर्थनैतिक सामंजस्य रक्षा का प्रयास चलाते जाना होगा विश्व भ्रातृत्व के आदर्श को वास्तवायित करना।

इस सामाजिक अर्थनैतिक संरचना में मनुष्य मानसिक और आध्यात्मिक स्तरों में पूर्ण स्वाधीनता पायेंगे। मानसिक और

आध्यात्मिक सम्पदायें अनन्त हैं। इसलिए ये सम्पत्तियाँ कोई मनुष्य जितना भी आहरण करे उससे किसी की कमी नहीं होगी। किन्तु जागतिक सम्पत्ति सीमित है। इस क्षेत्र में एक व्यक्ति अतिरिक्त संचय कर ले तो समाज के अधिकांश मनुष्य के न्यूनतम प्रयोजन आपूर्ति करने में कमी दिखाई देगी। इससे वृहत्तर जन-गण की आध्यात्मिक, मानसिक और भौतिक अग्रगति रुद्ध होने को बाध्य होगी। सुतरां भौतिक स्तर में व्यष्टि स्वाधीनता की समस्या के समाधान करने के लिए इसको अवश्य ही एक ऊद्ध व सीमा के बाहर जाने देना नहीं होगा और इसको कठोर भाव से प्रतिबन्धित करना भी उचित नहीं है। क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य के आध्यात्मिक, मानसिक तथा भौतिक स्तरों के विकास सम्भव नहीं है।

इस प्रकार आनन्द मार्ग का समाज दर्शन एकदम मनुष्य के व्यष्टित्व के सर्वांगीण विकास और मनुष्य के मन में विश्वैकताबोध का संचार कर विश्व भ्रातृत्व की प्रतिष्ठा का पथ-

निर्देशन करता है। आनन्द मार्ग विश्व-ब्रह्माण्ड की स्थूल सूक्ष्म तथा कारण की सभी सम्पत्तियों के प्रगतिशील उपयोग की बात करता है। समाज-देह में, प्राणशक्ति का संचार करने के लिये और इसकी प्रगति को त्वरान्वित करने के लिए आनन्द मार्ग ने दिया है प्रगतिशील उपयोग तत्त्व (Progressive Utilisation Theory) - संक्षेपमें 'प्राउट' (PROUT).

जो इस प्राउट का समर्थन करेंगे उन्हें कहा जा सकता है - 'प्राउटिस्ट'।

प्राउट का नीति समूह निम्नलिखित मौलिक सिद्धान्त के ऊपर निर्भरशील है -

(1) कोई व्यष्टि सामवायिक संस्था (Collective body) के सुस्पष्ट अनुमति या अनुमोदन के बिना कइ भी भौतिक सम्पत्ति संचय नहीं कर सकता।

(2) विश्व के यावतीय जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का सर्वाधिक उपयोग ग्रहण करना होगा और युक्तिसंगत बन्टन करना होगा।

(3) मानव समाज के मध्य व्यष्टिगत और समष्टिगत जितने प्रकार के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक सम्पत्तियाँ हैं, सबका सर्वाधिक उपयोग ग्रहण करना होगा।

(4) इस जागतिक, मानसिक, आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उपयोग समूह के बीच सुनिर्दिष्ट विवेचना और सामंजस्य रहना अवश्य प्रयोजनीय है।

(5) देश, काल, पात्र के परिवर्तन अनुयायी समग्र उपयोग नीति में परिवर्तन हो सकता है और यह उपयोग होगा प्रगतिशील स्वभाव का।

यही है हम लोगों का प्रगतिशील उपयोग तत्व या प्राउट।

(आइडिया ऐन्ड आइडियोलौजी)

(मूल अंग्रेजी से अनूदित)

चतुर्थ खण्ड

सूचीपत्र

प्राउट के
ऊपर कई एक प्रवचन

यह ब्रह्माण्ड भूमा चेतना का मानसिक और आन्तरिक विक्षेप एवं हम लोगों का प्रतिविम्बित विक्षेप है। हमलोग किसी मौलिक वस्तु का निर्माण नहीं कर सकते। हमलोग जो कुछ करते

हैं वह वस्तुओं के भौतिक तरंग के प्रतिबिम्बित होने से ही करते हैं। हम उनका आकृति परिवर्तन कर सकते हैं और रासायनिक योग किंवा भौतिक मिश्रण का निर्माण कर सकते हैं। इस प्रकार हम लोगों कां दैहिक-मानसिक अथवा वाह्य आंतरिक विक्षेप है। मौलिक तत्त्व मानवों द्वारा कदापि निर्मित नहीं हो सकते। अतः सर्वव्यापक सत्ता के अधीन ही विश्व का प्रभुत्व है, किसी व्यक्ति विशेष के अधीन नहीं। हम केवल इसका व्यवहार कर सकते हैं। हमलोग संयुक्त-परिवार के सदस्य के सदृश हैं, जो श्री जीमूतवाहन भट्टाचार्य द्वारा प्रतिपादित दायभाग सिद्धांत के समान है।

यह निखिल ब्रह्माण्ड हमलोगों की समान पैतृक सम्पत्ति है। हमलोगों का विश्व एक संयुक्त परिवार है और परमपुरुष हमलोगों के परमपिता हैं। एक संयुक्त परिवार के सदस्य होने के नाते हमें 'जियो और जीने दो' की नीति के अनुसार रहना चाहिए। संसार की प्रयुक्त और अप्रयुक्त सम्भावनाएँ किसी व्यक्ति विशेष

या राष्ट्र विशेष या राज्य विशेष के अधीन नहीं है। वे केवल इसका उपभोग कर सकते हैं। हम लोगों के सभी पार्थिव और अपार्थिव सम्पत्ति का उपभोग सर्वव्यापक सत्ता के उत्तराधिकार के सिद्धांत को मानते हुए करना चाहिए। यह हम लोगों का सामाजिक धर्म है। यह केवल सामाजिक धर्म ही नहीं अपितु तर्कयुक्त दृष्टिकोण भी है। यही सही सामाजिक दर्शन है।

हम विश्व रंगभूमि में अपरिमित सापेक्षताएँ एकत्र हैं। इसीलिए कोई भी राजकीय आज्ञा अथवा पैतृक सम्पत्ति दोषहीन नहीं कही जा सकती क्योंकि यह सापेक्षता पर आधृत है। अगर हम लोग पार्थिव या अपार्थिव मण्डली में एक दोषहीन श्रृंखला (नियम बद्धता) लाना चाहते हैं तो हम लोगों को किसी पूर्ण स्वतन्त्र सत्ता का आश्रय लेना पड़ेगा। यह ब्रह्माण्ड जो भूमा मन का आन्तरिक विक्षेप है यह भी सापेक्षता की ही सृष्टि है; किन्तु इसका प्रभुत्व भूमा मन के अधीन है। एक पूर्ण एवं दोषहीन

सामाजिक-राजनीतिक श्रृंखला के लिये सापेक्ष एवं निरपेक्ष का सुखद सामंजस्य होना चाहिए।

अगर हम लोग सर्वव्यापक सत्ता के उत्तराधिकार के उचित सिद्धांत को मानते हैं तब देश-विदेश का प्रश्न ही नहीं उठता। निखिल ब्रह्माण्ड हम लोगों की पैतृक सम्पत्ति है। हम सब जहाँ कहीं इच्छा हो जाने या बसने के लिए स्वतन्त्र हैं।

अणु मन में अनन्त प्यास है और इसे कोई भौतिक वस्तुओं को उपार्जित कर शांत नहीं कर सकता। हम लोगों की मानसिक अभिलाषाएँ त्रिपहलात्मक हैं, यथा- भौतिक-मानसिक और आध्यात्मिक। अणुमन अपनी अनन्त भौतिक भूख को भौतिक साधनों द्वारा जो बहुत बड़ा होने पर भी सीमित है, परिपूर्ण करना चाहता है। यह अनन्त प्यास ग्रह उपग्रहों पर आधिपत्य जमा कर भी तृप्त नहीं हो सकती। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस भौतिक प्यास को जो अनन्त है

मानसिक और आध्यात्मिक पहलुओं में परिवर्त्तित किया जाए। इन तीनों क्षेत्रों में मानसिक और आध्यात्मिक जगत अनन्त है इसलिए इन स्तरों में तृप्ति पाने के लिये संघर्ष व शोषण नहीं होगा, नहीं तो असन्तुष्ट भौतिक इच्छाएँ सम्भवनात्मक रूप रह जायेंगी और क्रमशः आवेग उपार्जित करेंगी एवं अन्ततोगत्वा विप्लव को जन्म देंगी।

मानवीय प्यास त्रिपहलात्मक है। आनन्द मार्ग का लक्ष्य है अशमनीय भौतिक प्यास को मानसिक और आध्यात्मिक प्यासों में परिवर्तित करना। रिनांसंस युनिर्वल का दायित्व है बौद्धिक अपील करना और प्राउटिस्टों का कार्य है कि वे देखें कि कानून और व्यवस्था का कठोर रूप से कार्यान्वयन होता है या नहीं। अगर इसका कठोर रूप से पालन नहीं होता और यह यम नियम के सिद्धांतों के विरुद्ध जाता है तो इसे परिस्थितियों पर दबाव डालकर करना होगा।

पार्थिव सम्पत्ति का उचित अर्जन और उचित वितरण होना चाहिए अन्यथा समाज की स्थिरता और शांति में विघ्न पहुंचेगा। प्रत्येक व्यक्ति की वैयक्तिक आय की सीमा विश्व समाज के संयुक्त साधनों के अनुसार निश्चित की जानी चाहिए। अनुचित अर्जन एवं पार्थिव साधनों के समुचित वितरण के आदर्श को कार्यान्वित करने के लिए पहली सीढ़ी होगी आध्यात्मिक और दूसरी मानसिक। जहां कहीं मानसिक दृष्टिकोण असफल होता है समाज के महत्तर हित के लिए शक्ति के प्रयोग का समर्थन होना समुचित है। जो इस संघर्ष को त्यागने का प्रयत्न कर रहे हैं वे मानवीय उत्तरदायित्व से दूर हट रहे हैं। मानवीय प्रगति हमेशा परिणामी है। प्रगति की गति संघर्ष और समिति के द्वारा द्रुततर होती जायेगी। शक्ति प्रयोग जीवन का सत्त्व है - मौलिक तत्त्व। जो शक्ति प्रयोग के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं, पाखण्डी हैं। शक्ति प्रयोग के अभाव का अर्थ है मृत्यु। हमलोग प्रत्येक घण्टा और प्रत्येक क्षण शक्ति प्रयोग की आवश्यकता अनुभव करते हैं। शक्ति के अप्रयोग का महत्त्व न तो

भौतिक न मानसिक और न आध्यात्मिक जगत में ही है। शक्ति का अंप्रयोग 'पाखण्डवाद' है।

यह विश्व भूमा मन का विक्षेपित मानसिक विषय है। प्रत्येक वस्तु पर सर्वव्यापक सत्ता का अधिकार है। मिलकियत परम पिता के हाथों में है और हम लोग केवल उनका व्यवहार कर सकते हैं। भूमि का प्रभुत्व न तो असामी के हाथ है और न तो जमींदार के हाथ। यह गलत और युक्तिहीन विचार है कि प्रभुत्व श्रमिकों के हाथ हो। इससे केवल संघर्ष और अव्यवस्था को बढ़ावा मिलता है। सर्वव्यापक सत्ता के उत्तराधिकार के सिद्धान्त को मानते हुए हमलोगों को इसका उपयोग योग्यतानुसार सर्वोत्तम तरीके से करना है।

भूमि के समाप्तीकरण के लिये जमींदार को किसी प्रकार का मुआवजा नहीं दिया जाना चाहिए। उचित होगा यदि प्रभुत्व विधवा, वृद्ध पुरुष या अल्प वयस्क के हाथ हो तो उन्हें वृत्ति दी

जाए। बेकार युवकों को काम दिया जाना चाहिए। छोटे जमींदार जिन्हें जीवन निर्वाह के अन्यान्य साधन नहीं है उन्हें भी वृत्ति मिलनी चाहिए। सैद्धांतिक रूप में मुआवजा कदापि नहीं दी जानी चाहिए।

मन मानसिक रूप से शरणागत होना चाहता है। हमारी भावनाएँ भौतिक-मानसिक विक्षेप है। आध्यात्मिक साधना विक्षेपित विषयों की सीमाओं को वर्द्धित कर देती है। कोण विक्षेपित पिण्ड के विस्तार पर निर्भर करता है अर्थात् विक्षेप के क्षेत्र पर।

जाति प्रथा का प्रवर्तन मध्य युग के धूर्त विप्रों ने की थी। विप्र युग में वे विशेषाधिकार की स्थिति को अपनी सन्तानों के लिए भी अक्षुण्ण करना चाहते थे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन बुद्धिजीवियों ने हजारों पुस्तकें लिख डाली एवं हजारों ईश्वर आधारित पदों का संकलन केवल यह दिखाने के लिए किया कि

जाति प्रथा ईश्वर निर्मित है। इस अतर्कयुक्त विचार को मन में बैठाने की यह एक मनोवैज्ञानिक विधि थी।

जो व्यक्ति बुन्देल राजपूतों की उन्नति के विषय में सोचता है - वह सम्पूर्ण राजपूत समाज का कल्याण चाहेगा यदि उनका मानसिक क्षेत्र साधना के कारण विस्तृत हो जाने के बाद हिन्दू, फिर बिहारी, फिर भारतीय और अन्ततोगत्वा सार्वभौमिक परिवार के एक सदस्य के रूप में स्वयं को अनुभव किया। गम्भीर विचार के बाद उसने इस निखिल ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण के साथ अपना तादात्म्य किया जो भूमा सत्ता के साथ अपनी तादात्म्यता के अनुभव का परिणाम है। यह सविकल्प समाधि की अवस्था है। इस प्रकार की प्रत्येक भावना जो सार्वभौम विक्षेप से कम है ठीक नहीं। राष्ट्रीयता का प्रचार जातीयता, प्रांतीयता प्रभृति की तरह एक मानसिक व्याधि है। इन सभी बीमारियों की सर्वरोगघ्न औषधि विश्व एकतावाद है अर्थात् 360° विक्षेप। लोग कहते हैं कि राष्ट्रीयता का कोण उस

प्रांतीयता या जातीयता से बड़ा है किन्तु वास्तव में अंश विक्षेपित पिण्ड के विस्तार पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, पाकिस्तान की जनसंख्या भारत की हिन्दू जनसंख्या से कम है। इस प्रकार हिन्दू की जातीयता पाकिस्तान की राष्ट्रीयता से बड़ी है। स्वीटजरलैण्ड की जनसंख्या बंगाल की जनसंख्या से कम है। यहाँ प्रान्तीयता राष्ट्रीयता से बड़ी है। सम्पूर्ण नेपाल की जनसंख्या राजपूतों की जनसंख्या से भी कम है। यहाँ जातीयता नेपाली राष्ट्रीयता से बड़ी है। हम लोगों को इनमें से किसी का समर्थन नहीं करना है।

(2)

विश्व एकतावाद किसी सापेक्ष तत्त्व पर निर्भर नहीं करता। इसीलिए यह वाद के दुर्गुणों से मुक्त है। 'वाद' दलगत स्वार्थ को बढ़ाता है। अनेकानेक तत्त्वों के बीच 'वाद' भी युद्ध का एक प्रधान कारण बन गया है। युद्ध एक आदर्शवादी संघर्ष नहीं है। जो

शांति की स्थापना करना चाहते हैं, उन्हें राष्ट्रीयता को छोड़ देना होगा और इसी प्रकार के दूसरे वादों को भी। अगर हम इन वादों को छोड़ देंगे तभी हमलोग एक सार्वभौम संगठन बना सकेंगे और इसे शक्तिशाली बनाते जायेंगे। यह विश्व सरकार की स्थापना का पहला स्तर होगा। प्रारम्भिक अवव्या में यह कानून बनाने वाला संगठन होगा। इस प्रकार के संगठन का प्रथम लाभदायक प्रभाव होगा कोई देश ऐसा कानून न बना सकेगा जिससे इसके अल्पसंख्यकों के स्वार्थों को हानि हो। इन कानूनों के कार्यान्वयन का भार स्थानीय सरकार पर होगा न कि विश्व सरकार पर। विश्व सरकार उन सिद्धांतों को निश्चित करेगी जिनके आधार पर किसी खास देश में खास कानून लागू किया जा सके।

यहाँ दो सभाएँ होंगी (1) निम्न सभा (2) उच्च सभा।

निम्न सभा में प्रतिनिधि देश की जनसंख्या के अनुसार भेजे जायेंगे। उच्च सभा के प्रतिनिधिगण विभिन्न देशों से भेजे

जायेंगे। सर्वप्रथम विधेयक निम्न सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा और इसकी अन्तिम स्वीकृति के पूर्व उच्च सभा में इस पर यथायोग्य विचार होगा। छोटे देश तो निम्न सभा के लिए पृथक् प्रतिनिधि नहीं भेज सकते उन्हें दूसरे देशों के प्रतिनिधियों को उक्त विधेयक के गुण एवं दोषों के सम्बन्ध में प्रतीति करने का सुअवसर दिया जायेगा।

मनुष्य देश और काल को तीव्रता से वश में करता जा रहा है। विश्व सरकार की सीमा बढ़ती जायेगी और एक दिन यह विश्व के ग्रह-उपग्रहों को भी अपने अन्तर्गत कर लेगी। एक भाषा, यथा, सामान्य विश्व भाषा विचारों के आदान-प्रदान के लिए विभिन्न भाषाभाषी दलों के बीच आवश्यक साधन होगा। आजकल अंगरेजी भाषा को विश्व भाषा होने का सर्वगुण है, किन्तु यह समयानुसार परिवर्तणीय है।

एक सामान्य विश्व भाषा के लिए एक वैज्ञानिक लिपि आवश्यक हो जाती है। आजकल रोमन लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। क्षेत्रीय लिपि स्थानीय भाषा के लिये निश्चित की जानी चाहिए। रोमन और क्षेत्रीय दोनों लिपियाँ एक दूसरे के साथ-साथ चल सकती है।

कोई राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय पोशाक की व्यवस्था नहीं की जानी चाहिये। पोशाक का चुनाव किसी खास स्थान की जलवायु पर आघृत है। पोशाक के चुनाव में पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिए।

संस्कृति एक स्पष्ट शब्द है। यह सामाजिक जीवन की सामूहिक अभिव्यक्ति है और इसका ढाँचा समष्टि मूलक है। 'कल्चर' शब्द के लिये संस्कृत शब्द है संस्कृति और कृष्टि। संस्कृति अच्छे अर्थ में व्यवहृत होती है एवं कृष्टि सामान्य अर्थ में। बहुत से क्षेत्रों में ऊपरी ढंग से कुछ परिवर्तन पाये जाते हैं

किन्तु मानव समाज के आभ्यान्तरीण सांस्कृतिक प्रवाह में कोई अन्तर नहीं होता। अन्तर केवल वाह्य है, आन्तरिक नहीं। सम्पूर्ण संसार के लिये संस्कृति एक है। समग्र मनुष्यत्व के लिये सामान्य तत्त्व (अर्थात् संस्कृति शब्द के सच्चे अर्थ में) हमेशा प्रोत्साहित किए जाने चाहिये। किन्तु ऊपरी विभिन्नताओं को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। जो इन विभेदों को प्रोत्साहित करते हैं और विभाजनात्मक मनोवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं वे मानवीय उन्नति को खतरे में डालते हैं। व्यापक सांस्कृतिक दृष्टिकोण को स्थापित करने के लिए हमें ऊपरी विभिन्नताओं को वैवाहिक एवं अन्यान्य सामाजिक-आर्थिक समन्वय के द्वारा मिटाना चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय तीव्रता से राष्ट्रीयता का स्थान ले रही है। एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब इस अन्तर्राष्ट्रीयता का रूप विश्व एकात्मकता में परिणत हो जायेगा। राष्ट्रीयता की भावना प्रसुप्त अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीयता की सीमा में रहती है। आज से

अधिक उन्नत समाज बनाने के लिए जाति, सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता प्रभृति गंदे विचारों को छोड़ देना होगा। जैसे-जैसे मानसिक विक्षेप की परिवृद्धि हो रही है, संसार छोटा होता चला जा रहा है। एक ऐसा दिन अवश्य आयेगा जब मानवीय पिपासा स्वाभाविक प्रेरणाओं से परितृप्त न होकर मानसिक दृष्टि के लिये विस्तृत क्षेत्र की मांग करेगी। एक नवीन विश्व एकतावादी मानव जाति का अवश्य विकास होगा। इस नयी मानव जाति के लिए एक सामान्य भाषा चाहिए जो समग्र जाति के लिए अन्तर्भाषीय माध्यम हो।

भ्रष्टाचार दूर करने के लिये एक रचनात्मक आदर्श होना चाहिये। भारत के विभिन्न नागरिक आन्दोलन रचनात्मक आदर्श के अभाव में लाभदायक सेवा प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे। वे केवल लड़ाई के लिये लड़ाई करते रहे, कुछ लाभ नहीं हुआ। इसीलिये आवश्यक है कि वह आदर्श प्रथम, द्वितीय और सर्वदा आदर्श बना रहना चाहिए।

वे लोग जिनमें रचनात्मक आदर्श की कमी है पूँजीवादियों को शोषण में सहायता पहुँचाते हैं। केवल पूँजीवादी की कटु आलोचना से ही जनता की कोई सेवा न हो सकेगी, प्रत्युत इससे समाज-विरोधी तत्त्वों को शोषण के लिये नये-नये मनसूबे निकालने में सहायता मिलेगी। यह आज भारत की अवस्था है। वामपन्थी पूँजीवादियों की कटु आलोचना करते हैं जिसका कोई लाभदायक फल नहीं होता है और पूँजीवादियों ने शासक दल को प्रभावित करके राजशक्ति पर अधिकार जमा लिया है। हमारा आदर्श रचनात्मक होना चाहिए और हमें अविराम बिना सन्धि किये हुये सभी मानव विरोधी एवं समाज विरोधी तत्वों के साथ संघर्ष करते रहना चाहिये। हमें पूँजीवाद से लड़ना है न कि पूँजीवादियों से।

हमें यह 'वाद' मानव समाज से दूर कर देना है क्योंकि 'वाद' ही मानवता को पंगु बनाता है। पूँजीवादी एक प्रकार की

मानसिक व्याधि से पीड़ित है और हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी भौतिक पिपासा को मानसिक एवं आध्यात्मिक कार्यों की ओर उन्मुख करके उनका रोग उत्पादित कर दें।

(3)

गणतांत्रिक ढाँचे के अन्तर्गत समाजवादी सरकार कदापि नहीं हो सकती। जो गणतांत्रिक मंच से समाजवाद पर भाषण देते हैं वे जनता को ठगते हैं। केवल संविधानिक त्रुटियों से बचने और जनता के विश्वास को प्राप्त करने के लिए नेतागण समाजवाद पर व्याख्यान देते हैं और समाजवाद के ढाँचे पर सरकार की स्थापना की प्रतिज्ञा करते हैं जो असंभव है। ये तथाकथित नेता समाजवादी दिखावे के अलवा और कुछ नहीं है।

यदि किसी खास देश या ज़िले का औद्योगीकरण होता है तो यह विश्व के अन्य भागों या देशों के कल्याण या आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता पहुँचाना नहीं होगा। इसीलिये उद्योग धन्धों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये किन्तु आधारोद्योग (Key Industry) का केन्द्रीकरण होना चाहिए। उदाहरणार्थ, कताई उद्योग का केन्द्रीकरण होना चाहिए जिसके चारों ओर बुनाई उद्योग विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत पर होना चाहिए। उन क्षेत्रों में भी जहाँ जलवायु आत्यन्तिक है कताई-बुनाई की तरह के उद्योग धन्धे कृत्रिम वाष्पीकरण के द्वारा स्थापित किए जा सकते हैं। यह आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई के निर्माण में सहायता देगा जो अत्यावश्यक है। परिवहन की सुविधा के साथ ही आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई का क्षेत्र बढ़ेगा। एक दिन यह संसार एक आर्थिक इकाई बन जायेगा। एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब विश्व के सम्पूर्ण ग्रहोपग्रह एक आर्थिक इकाई बन जायें।

वृहत् पैमाने के उद्योग धन्धे एवं लघु पैमाने के उद्योग धन्धे एक दूसरे के अगल-बगल साथ-साथ चालू रहने चाहिये। मुख्य उद्योग धन्धे निकटतम सरकार के द्वारा व्यवस्थित होने चाहिये क्योंकि जटिलता एवं विशालता के कारण सहकारी आधार पर इसे चलाना सम्भव नहीं। लघु पैमाने के उद्योग धन्धों को सहकारी आधार पर चलाना चाहिए और लघु उद्योग धन्धे जो सहकारी आधार पर चलाये नहीं जा सकते उसे निजी व्यवसाय पर छोड़ देना चाहिये।

(1) लघु व्यवसाय व्यक्तियों के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये।

(2) वृहत् उद्योग धन्धे निकटतम सरकार के प्रभुत्व में होना चाहिये।

(3) वृहत् और लघु उद्योग धन्धों के बीच के उद्योग सहकारी आधार पर चलना चाहिये।

केन्द्रीय सरकार को बड़े पैमाने के उद्योग धन्धों पर नियन्त्रण नहीं करना चाहिये क्योंकि यह स्थानीय जनता की

सुविधा में बाधा डालेगा। जहाँ कहीं संघ सरकार हैं ये उद्योग धन्धे निकटतम सरकार के द्वारा नियन्त्रित किये जाने चाहिये। अथवा जहाँ कहीं इकाई सरकार है यह स्थानीय संस्था के द्वारा व्यवस्थित होना चाहिये।

औद्योगिक विकेन्द्रीकरण केवल सामूहिक-आर्थिक ढाँचे में ही सम्भव है। इस प्रकार के ढाँचे में कोई लाभ की प्रवृत्ति नहीं बच जाती है। पूँजीवादी उन्हीं स्थानों पर उद्योग धन्धे आरम्भ करते हैं जहाँ निम्नलिखित तत्त्व वर्तमान रहते हैं :-

(1) पूँजी, (2) काम, (3) अनुकूल जलवायु, (4) बिक्री के लिये तैयार बाजार। वे हमेशा उत्पादन के मूल्य को न्यून करने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए वे विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को कदापि नहीं मानेंगे। सामूहिक आर्थिक ढांचे में लाभ की प्रवृत्ति की कोई गुंजाइश नहीं है: यहाँ उद्योग धन्धे उपभोग के लिये है।

सामूहिक आर्थिक ढाँचे के अन्तर्गत आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई को शक्तिशाली बनाना होगा।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान का उपयोग सेवा और परमानन्द के लिये होना चाहिये। उद्योग धन्धों का कायाकल्प (नवीकरण) होना चाहिये, जैसे पुराने कल-पुर्जे के स्थान पर नये एवं अधिक वैज्ञानिक कलपुर्जे लगाए जा सकते हैं। इस कृत्रिम सक्रियता और राकेट के युग में पुराने और टूटे फूटे साधनों जैसे चर्खा की कोई उपयोगिता नहीं है। यह कहना गलत है कि उद्योगों का नवीकरण बेकारी की समस्या का मूल कारण है। इस प्रकार का प्रचार सामाजिक आर्थिक दर्शन के विषय में अल्पज्ञान रखने वाले नेताओं के द्वारा किये जाते हैं। बेकारी की समस्या का प्रश्न केवल पूँजीवादी ढाँचे में ही उठता है जहाँ उद्योग धन्धे मात्र लाभ कमाने के लिये हैं। सामूहिक आर्थिक ढाँचे के अन्तर्गत जहाँ उद्योग धन्धे उपभोग के लिये हैं लाभकमाने के लिए नहीं बेकारी की समस्या का प्रश्न ही नहीं

उठता। यहाँ श्रमिकों की संख्या कम नहीं होगी, वरन् दैनिक कार्य काल में कमी होगी और बचा हुआ समय मानसिक और आध्यात्मिक कार्यों में लगाया जाएगा। कार्य अवधि में कमी केवल उत्पादन पर ही निर्भर नहीं करता वरन् सामग्री और काम के साधनों को प्राप्यता की मांग पर।

उद्योग धन्धों में श्रमिकों को खण्ड कार्यों एवं अतिरिक्त भत्ता कार्य प्रणाली (bonus system of work) के क्षेत्र को विस्तृत करके प्रोत्साहन देना चाहिए। कारखाने में श्रमिकों के द्वारा प्रबन्ध के अधिकार को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए। ये दो तत्त्व कारखाने के उत्पादन को बढ़ायेंगे क्योंकि इस प्रकार की परिस्थिति में श्रमिक पूरी ईमानदारी के साथ कार्य करने में प्रोत्साहित होंगे। उत्पादन वृद्धि के लिए केवल ऊँची आवाज में लम्बे-लम्बे भाषण देने से काम नहीं चलेगा; श्रमिकों को यह समझाने का अवसर दिया जाये कि उत्पादन के रूप में कारखाने की जो आमदनी बढ़ेगी उसमें उसका भी भाग रहेगा।

व्यक्तिगत मिलकियत के साथ सरकारी मिलकियत खुली प्रतियोगिता में कदापि नहीं टिक सकती। इस प्रकार इसे रक्षक साधन प्रदान करना चाहिये, जैसे बिक्री कर, चुंगी प्रभृति से छूट। ये रक्षक साधन केवल अत्यावश्यक सामग्री के लिये होनी चाहिए। व्यक्तिगत व्यवसाय उन सामग्री के लिए निश्चित रहनी चाहिए जो जीवन के लिये अनिवार्य नहीं है जैसे कि ताम्बूल की दुकानें, चाय की दुकानें, रेस्तरां प्रभृति।

समाज के पुरुष वर्ग लाभदायक अवस्था में है। पुरुष वर्ग पर आर्थिक रूप से निर्भर रहने के कारण परित्यक्ता स्त्रियों के एक दल को वेश्यावृत्ति अपनाना पड़ता है। जब स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता का लाभ मिलेगा और समाज में दोनों की अवस्था बराबर होगी तब इस प्रथा का अन्त हो जाएगा। समाज को उन स्त्रियों को जिन्होंने गन्दा व्यवसाय छोड़ दिया है और अपने चरित्र का सुधार किया है सम्मानित स्थान देना पड़ेगा। वेश्यावृत्ति के कारण सामाजिक हानि है।

दहेज प्रथा दो तत्त्वों पर आधारित है समाज के दोनों अंशों में से किसी एक का आर्थिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होना एवं पुरुषों और स्त्रियों की असंगत संख्या। बर्मा की स्त्री जाति आर्थिक रूप से स्वतन्त्र थी, इसीलिए पुरुष की ही शादी में दहेज प्रदान करना पड़ता था। पंजाब में स्त्रियों से पुरुषों की संख्या अधिक थी इसीलिये यहाँ दहेज प्रथा या विधवा विवाह की कोई समस्या नहीं थी। इस सामाजिक अन्याय को स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान कर एवं अन्तर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय विवाह को प्रोत्साहन देकर दूर किया जा सकता है।

आज 'शांति' 'शांति' की पुकार मचाना एक फैशन हो गया है। परन्तु शान्ति के प्रचारक एक ओर शांति का सन्देश सुनाते हैं और दूसरी ओर बारूद सुखाकर तैयार रखते हैं। परन्तु क्या उनका केवल शाब्दिक सन्देश सफल हो सकता है? कदापि नहीं। शान्ति एक सापेक्ष शब्द है। यह लड़ाई का परिणाम है। जब

तमोगुण प्रबल होता है तब एक शांति होती है जिसे सात्विकी शांति कहते हैं। जब तक विश्व का अस्तित्व रहेगा तब तक तमोगुणी और सत्त्वगुणी शक्तियों के बीच लड़ाई होती रहेगी। इस सापेक्षता के राज्य में पूर्ण शांति कदापि नहीं हो सकती। पूर्ण शांति किसी व्यक्ति के जीवन में आ सकती है किसी सामूहिक ढांचे में नहीं। जब व्यक्तिगत चैतन्य सर्वव्यापक चैतन्य में परिणत हो जाएगा तब व्यक्तिगत अभिलाषा सर्वव्यापक अभिलाषा में बदल जाएगी जिसके परिणामस्वरूप पूर्ण शांति की स्थापना होगी। पूर्ण शांति का अर्थ है विश्व के सभी कार्यों का स्थगित हो जाना तो असम्भव है। इसीलिये शांति हेतु चिल्लाना पाखण्ड है। शान्ति के लिए पागलपन राजनीति की कूटनीति माना जा सकता है किन्तु यह किसी प्रकार का सिद्धांत नहीं माना जा सकता। संघर्ष जीवन का सत्त्व है और शान्ति की स्थापना लड़ाई के बाद ही हो सकती है। इस प्रकार किसी भी आक्रमण के मामले में अगर आक्रांत देश के नेतृवृन्द वास्तव में शांति स्थापित करने को उत्सुक हैं तो उन्हें आक्रमणकारी देश के साम्राज्यवादी (विस्तारवादी) नीति के विरुद्ध लड़ना चाहिए।

क्षमा करना एक वैयक्तिक गुण है। यह केवल व्यक्तिगत जीवन में सम्भव है। सामूहिक साधना का अंग यह कदापि नहीं हो सकता। जो सामूहिक व्यापार में अपनी टांग अड़ाते हैं या सामूहिक संघ के प्रति किये गए अपराध को क्षमा करते हैं वे सामाजिक पाप करते हैं। महात्मा गांधीजी को देश की जनता के स्वार्थों और भावनाओं के विरुद्ध एक सरकार से दूसरे सरकार को पचास करोड़ रुपए देने को बाध्य नहीं करना चाहिए था।

यह विचार गलत है कि तेजी से बदली हुई जनसंख्या सामूहिक आर्थिक ढांचे पर किसी भी तरह से प्रभाव डालती है। आज पूँजीवादी संतति निग्रह का प्रचार करके जनसंख्या निग्रह की चेष्टा करते हैं क्योंकि पूँजीवादियों के लिए जनसंख्या की वृद्धि हानिकारक है। सामूहिक आर्थिक ढांचे के अन्तर्गत किसी को संतति निग्रह के पक्ष में रहने की आवश्यकता नहीं है। यह आवश्यक सामग्री के उत्पादन में सहायक होगी। वैज्ञानिक युग में

भरपेट भोजन के लिए एक छोटी टिकिया ही पर्याप्त होगी। इसीलिए बढ़ती हुई जनसंख्या से हमें नहीं डरना चाहिए।

मृत्यु का अर्थ भौतिक और मानसिक तरंगों के बीच की समान्तरालता का अभाव है। भौतिक तरंगे बुढ़ापा और बीमारी के कारण बदलती है, जब कि मानसिक, अत्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म विचारों के कारण। भौतिक तरंगों के पृथक हो जाने की अवस्था में मृतक, वैज्ञानिक पद्धति से पुनर्जीवन पा सकता है; किन्तु मानसिक पृथक्करण के मामले में यह सम्भव नहीं। क्योंकि इस प्रकार के मामले में अगर सादृश्य मानसिक तरंगे वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा पुनर्निर्मित होती है तो ये श्रीमान् 'ख' होंगे श्रीमान 'क' नहीं जिन्होंने जीवन पाया। अगर तरंगों का फैलाव अनन्त हो जाता है (सीधी रेखा में) तो आध्यात्मिक साधना के द्वारा वह व्यक्ति परम पुरुष में मिल जायगा।

एक समय आयेगा जब मन प्रयोगशाला में निर्मित किया जायेगा। बच्चे प्रयोगशाला में जन्म लेंगे। मानवीय प्रगति प्राकृतिक प्रगति है। जब प्रयोगशाला में शिशु उत्पादित होगा तब प्रकृति पुरुष और स्त्रियों की प्रजनन क्षमता छीन लेगी। कोई पिता और माता नहीं होंगे। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था बदल जाएगी। पुरुष और स्त्रियों की उत्पादक शक्ति का उपयोग उच्चतर एवं सूक्ष्मतर उद्देश्यों के लिये होगा। वे प्रयोगशाला के बच्चे मानसिक और आध्यात्मिक रूप में आज के मनुष्यों की अपेक्षा अधिक उन्नत होंगे।

एक सही दर्शन और साधना की एक सही प्रणाली भौतिक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक रोगों की सर्वरोगघ्न औषधि है। सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण में राजनीतिकों का कोई महत्व नहीं रह जाएगा।

आज के जीवन में प्रत्येक क्षेत्र में अनैतिकता की छाया तीव्रता से आकार लेती जा रही है और मानवीय उन्नति में बाधा उपस्थित कर रही है। इन अनैतिकताओं को दूर करने के लिये नैतिक बल की आवश्यकता है। गणतान्त्रिक ढाँचे में कार्य करती सरकार से इस नैतिक बल की आशा नहीं की जा सकती। हम इसकी आशा अराजनीतिक तत्त्वों से कर सकते हैं। यदि शासक दल अथवा नेतागण के दोषपूर्ण कार्यों को रोकने के लिए कोई नैतिक शक्ति नहीं रहेगी तो सरकार चाहे फासिस्ट, साम्राज्यवादी, जनतांत्रिक, अधिनायक तान्त्रिक, नौकरशाही या प्रजातांत्रिक ही क्यों न हो अत्याचार निश्चय ही होगा। सरकार की ओर से अनैतिक कार्यों का परिणाम होता है जन विप्लव। मध्यवर्ग के लोग जिनकी बुद्धि विकसित होती है अर्थाभाव के कारण अत्याचार के विरुद्ध जन विप्लव में आगे बढ़कर भाग नहीं लेते और अन्ततोगत्वा सत्ता में परिवर्तन राजनीतिक रूप से जाग्रत समाज के इस अंश के द्वारा होता है। प्रजातांत्रिक ढाँचे में मध्यवर्ग के लोग जो सरकार के एक भागीदार के रूप में कार्य करते हैं विरोध की आवाज उठाने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

वे मौन रूप से कष्ट सहन करने वाले होते हैं जिनके कष्टों का कुछ भी मूल्य नहीं मिलता। यह प्रजातांत्रिक सरकार की सबसे बड़ी भूल है।

सभ्यता का इतिहास बताता है कि किसी खास सरकार का पतन अनिवार्य हो जाता है अगर वह मध्य वर्ग के कल्याण के विरुद्ध जाती है। शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े देश में जहाँ जनसमूह में राजनीतिक चेतना नहीं वयस्क मताधिकार की प्रणाली एवं बात ही शासन-यन्त्र को दूषित कर देती है और सरकार मध्य वर्ग के लोगों के कल्याण के विरुद्ध सिद्ध होती है, क्योंकि कपटचारी (बात बनाने वाले) नेतागण न तो उन्हें अपने शब्द-जाल के द्वारा धोखा दे सकते हैं और न उनका मत (वोट) ही खरीद सकते हैं। भ्रष्टाचारी नेतागण अपनी पूरी चातुरी का उपयोग पिछड़ी जाति के लोगों से वोट खरीदने में करते हैं। उम्मीदवार जितने ही धूर्त्त होंगे उतनी ही सफलता प्राप्त करेंगे इसीलिए प्रत्येक देश में राजनीतिक नेताओं के बीच फैले हुए

भ्रष्टाचार को रोकने के लिए राजनीतिक चेतना रखने वाले एवं राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित दल का निर्माण अत्यावश्यक है।

संसार बड़ी तेजी से आगे बढ़ता जा रहा है एवं पग-पग पर ऐसे दलों की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। युवक समुदाय तथाकथित राजनीतिक रूप से शिक्षित दल का एक महत्वपूर्ण अंग है एवं विद्यार्थी समुदाय इसका एक विशिष्ट वर्ग है। राजनीतिक ढांचे के दोष से शिक्षा पद्धति की अवनति होती है फलस्वरूप विद्यार्थीगण का भविष्य इससे प्रभावित होता है। राज्य सरकार विश्वविद्यालयों के पीछे आर्थिक शक्ति होने के कारण विद्यालयों को दयनीय रूप से अपना परम आज्ञाकारी दास का कार्य करने के लिये बाध्य करती है। प्राउटिस्ट संगठन स्थापित करने का एक मात्र उद्देश्य हमारे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के अनैतिक कार्य व्यापारों के ऊपर नैतिक नियन्त्रण रखना है।

आजकल राजनीतिक अपने स्वार्थ साधन के लिए छात्र समुदाय को कुपथ की ओर ले जा रहे हैं। इन लोगों के हाथ में छात्र समुदाय कठपुतली जैसे हो गए हैं। वे अपनी मौलिकता को खो चुके हैं और इसीलिए नैतिक नियन्त्रण करने में असमर्थ हो गये हैं। प्राउटिस्टों को अराजनीतिक संस्था के रूप में यम और नियम को दृढ़ता पूर्वक मानते हुए कार्य करना चाहिए।

जिन्हें एक शुद्ध दर्शन और यम-नियम पर आधारित एक शुद्ध आध्यात्मिक साधना है ये ही कल के समाज का नेतृत्व करने वाले होंगे। उद्बुद्ध व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे पाखण्डी राजनीतिकों के हाथ से भौतिक शक्ति और बौद्धिक नेतृत्व छीन लें। समाज में राजनीतिकों का कोई महत्व नहीं है क्योंकि वे केवल एक दूसरे पर कीचड़ उछालने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते हैं। यदि सद्चित्र सक्रिय जनसमुदाय का समर्थन पायेंगे तो विप्लव अवश्य होगा। यदि ऐसी परिस्थिति है कि सरकार प्राउट

के आदर्श को अंगीकृत करे तो सद्वित्रों का शासन स्थापित हो जाएगा।

राजनीतिकों का लक्ष्य केवल सत्ता को हथियाने भर की है। वे जनता को ऊँची-ऊँची बातें कह कर मूर्ख बनाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित किया जाए और ऐसा होने पर ही राजनीतिक जनता को नहीं ठग सकेंगे। वह समय अवश्य आएगा जब उनकी ठगी का कोई भी हथकंडा नहीं रुकेगा एवं जनता उनकी समाज सेवा के आवरण को फाड़ कर फेंक देगी; वर्तमान समय में जनसाधारण राजनीतिक रूप से प्रबुद्ध नहीं है। बुद्धिजीवी वर्ग उनकी अज्ञानता का अनुचित लाभ उठाते हैं। प्राउटिस्टों का कर्त्तव्य है कि तथाकथित बुद्धिजीवियों को चुनौती दें।

एक विश्व सेना होनी चाहिए किन्तु सेना की सांख्यिक शक्ति क्रमशः न्यून की जा सकती है। विश्व सरकार के निर्माण के

बाद भी प्रत्येक इकाई का आन्तरिक एवं पारस्परिक कलह बन्द नहीं होगा। अतएव सेना की आवश्यकता सदैव बनी रहेगी। यह सृष्टि विद्या और अविद्या के संघर्ष का परिणाम है। अतः सेना समाज का एक अनिवार्य पहलू है।

(5)

गणतांत्रिक देशों में सत्तारूढ़ राजनीतिक दल शिक्षा पद्धति के माध्यम से अपने दल के आदर्शों का प्रचार करता है। वे केवल ऐसे पाठ्य पुस्तकों का चुनाव करते हैं जो उनके दल के आदर्शों के अनुसार हो। विश्वविद्यालयों को उनकी आर्थिक अधीनता के कारण सरकार के समक्ष आत्म समर्पण करने को बाध्य किया जाता है। प्रउटिस्ट आंदोलन विश्वविद्यालयों एवं शैक्षणिक संस्थाओं को गन्दे राजनीतिक दलबन्दियों से मुक्त करेगा अन्यथा शिक्षा पद्धति विभिन्न दलों की सरकार की उन्नति या अवनति के अनुसार बदलती रहेगी। सरकार का कर्त्तव्य है विश्वविद्यालयों

की आर्थिक व्यवस्था करना न कि उनके आंतरिक कार्यों में बाधा डालना। प्रसारण पद्धति (आकाशवाणी दूरदर्शन) को सरकारी नियन्त्रण से मुक्त होना चाहिए।

एक अच्छे और मजबूत समाज के लिये अच्छे, मजबूत और सुशिक्षित नागरिकों की आवश्यकता है। राजनेता वर्तमान समाज की बुराइयों के संशोधन में असमर्थ है। उनकी गतिविधि एक मजबूत समाज के विकास के लिये हानिकारक है।

सरकार के अपने रूप हैं। उन सबों में प्रजातांत्रिक ढांचे की बड़ी प्रशंसा की जाती है। प्रजातन्त्र को प्रजा का, प्रजा के लिये एवं प्रजा द्वारा निर्मित सरकार कहा जाता है; किन्तु सत्य तो यह है कि यह बहुसंख्यक दल का शासन है। इसीलिए प्रजातन्त्र का अर्थ है भीड़तन्त्र क्योंकि प्रजातांत्रिक ढाँचा भीड़ मनोविज्ञान के द्वारा नियन्त्रित होता है। समाज में अधिकता मूर्खे की होती है।

बुद्धिमान हमेशा अल्पसंख्यक ही रहते हैं। इसीलिए अन्ततोगत्वा प्रजातन्त्र मूखतन्त्र के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

भ्रष्टाचार को रोकने के लिये समाज के प्रजातांत्रिक ढांचे के अन्तर्गत सरकार कानून बनाने में बड़ी तत्परता दिखाती है। किन्तु सरकार उन कानूनों के कार्यान्वयन में तदनुरूप तत्पर नहीं रहती क्योंकि नेताओं को उन वोटों पर निर्भर रहना पड़ता है जो प्रबल समाज विरोधी तत्त्वों के द्वारा एकत्र होते हैं। यहाँ तीन प्रमुख तत्त्व हैं (1) मानवीय पहुँच, (2) शक्ति प्रयोग और (3) भ्रष्टाचार के विरुद्ध कड़े कानून। किन्तु प्रजातांत्रिक समाज के अन्तर्गत हम तीसरे भाग को पूरी तरह नहीं पा सकते हैं और दूसरे भाग को इस ढाँचे के अन्दर कोई गुंजाइश नहीं।

सरकार का संश्लेषणात्मक भाग चुना जाएगा और विश्लेषणात्मक भाग चुना जाएगा। संश्लेषणात्मक भाग नीति विषयक आज्ञा देगा और विश्लेषणात्मक भाग स्वीकृत नीति का

सम्पादन करेगा। इस प्रकार हमारा सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक ढाँचा चुनाव-निर्वाचनात्मक होगा।

सद्वित्र बौद्धिक विप्लव अथवा जनसाधारण को गतिशील कर सत्ता हस्तगत करेंगे। प्राउटिस्टों का कर्त्तव्य होगा सद्वित्रों को शक्तिशाली बनाने में सहायता करना और जन आन्दोलन द्वारा उनका हाथ मजबूत बनाना। रिनांसेंस युनिर्वसल बौद्धिक एवं नैतिक प्रचार को जारी रखेगा। सामाजिक, आर्थिक आदर्श दो तरीके से स्थापित किये जा सकते हैं -

(1) बौद्धिक या प्रजातांत्रिक विप्लव।

(2) भौतिक विप्लव

बौद्धिक विप्लव आदर्शों के प्रचार के लिए है किन्तु उसके कार्यान्वित होने में लम्बा समय लगेगा जिसके लिए मानवता रुकी नहीं रह सकती। यह केवल सैद्धांतिक रूप से ही सम्भव है।

भौतिक विप्लव का अर्थ है जनकल्याण के सिद्धांतों के विरुद्ध जाते हुए तत्त्वों के साथ लड़ना। प्राउटिस्ट सभी प्रकार के विभाजनात्मक मनोवृत्तियों और सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध विप्लव के एक नवीन युग का निर्माण करेंगे। अगर किसी देश का कानून अनैतिकों के चरित्र को सुधारने के पर्याप्त शक्तिशाली नहीं है तब प्राउटिस्टों को कुछ ठोस कार्य करना होगा।

जब किसी वर्ग के लोगों-अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक की आशा आकांक्षा की पूर्ति एक प्रजातांत्रिक ढाँचे में पूर्ण नहीं होती तो अगणतान्त्रिक या रक्तरंजित विप्लव निश्चित हो जाता है। यद्यपि यह विप्लव ठीक नहीं है तथापि यह अनिवार्य है।

राष्ट्र (nation) की स्थिति निम्नलिखित तत्त्वों पर निर्भर करती है - (1) सामान्य इतिहास (common history) , (2) सामान्य परम्परा (common tradition), (3) सामान्य क्षेत्र (common territory) (4) प्रजाति (ethnic group),

(5)धर्म विश्वास (Religious faith), (6) भाषा(Language), (7) भावनाएँ (Sentiment) एवं (8) सामान्य आदर्श (Common Ideology)

उपर्युक्त तत्त्वों के बीच संख्या एक से सात सापेक्ष तत्त्व हैं, इसलिये अस्थायी हैं, आठवें तत्त्व की सीमा में सापेक्षता के साथ निरपेक्ष का भी सम्मिश्रण हो सकता है। निरपेक्ष या स्वतन्त्र तत्त्व सर्वव्यापक सत्ता के प्रभुत्व का आदर्श (यह निखिल ब्रह्माण्ड ब्रह्म की सृष्टि है अतः इसका प्रभुत्व उनके अधीन है। हमें उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। किन्तु यह दावा नहीं करना चाहिए कि यह मेरी वस्तु है - प्रत्येक वस्तु हमारी सामान्य पैतृक सम्पत्ति है। हमें सापेक्षताओं की सीमा के अन्तर्गत इन तत्त्वों को मानना चाहिए।

सामान्य आध्यात्मिक तत्त्व केवल अनेक भाषाओं या अनेक धर्ममतों के निवासियों को एक रूप नहीं करता, वरन् समग्र विश्व

समाज सामान्य आध्यात्मिक झण्डे के अन्तर्गत आएगा और एक हो जाएगा।

बौद्धिक विप्लव गणतान्त्रिक होता है। प्रठटिस्टों को लोगों को अपने अधिकार और मांगों के प्रति सचेत कर देना चाहिये। यह निम्न रूप से किया जा सकता है।

(1) अध्ययन मण्डली की शुरूआत और साहित्य को लोकप्रिय बनाना।

(2) मंच से प्रचार और सामूहिक जन विप्लव। यह आदर्शवादी उद्बोधन के लिये है, क्योंकि समुदाय आदर्शवादी रूप से कदापि शिक्षित नहीं हो सकता।

(3) गणतान्त्रिक संघर्ष में प्राउटिस्टों को सद्वित्रों का समर्थन करना चाहिए (उदाहरणार्थ, संसद् विधान सभाओं में स्थानों को भरने, स्थानीय सरकार एवं सहकारी समिति प्रभृति में स्थान प्राप्त करने के लिये)

प्रथम अवस्था में एक विषय। द्वितीय अवस्था में दो विषय। तृतीय अवस्था में तीन विषय।

गणतान्त्रिक ढांचे में समाजीकरण सम्भव नहीं।

(6)

यह विश्व एक यौथ परिवार के सदृश है। शान्ति एक सुव्यवस्थित सामाजिक आर्थिक संरचना पर निर्भर करती है। सामाजिक-आर्थिक ढांचा आदर्शवादी दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। पहले हमें एक रचनात्मक आदर्श की अपेक्षा है। आदर्श मात्र चरम बिन्दु नहीं अपितु आरम्भिक बिन्दु भी होना चाहिये जो हमें सदा शक्ति प्रदान करता रहेगा। हमें विश्व समाज, बन्धुत्व के एक विश्वजनीन बन्धन की अपेक्षा है। विश्व बन्धुत्व के लिये हमें सामान्य तत्त्वों को बढ़ावा देना होगा और सभी विभाजनात्मक

मनोवृत्तियों को निरुत्साहित करना होगा। जहाँ तक स्थानीय विभिन्नताओं का सम्बन्ध है हमें चुप रहना चाहिए। सम्पूर्ण विश्व समाज की एक संस्कृति है। इसके मूल में ही मानवीय मूल्य है। सम्पूर्ण विश्व में मानव समाज की एक ही मानवीय भावधारा है और वह भावना सुख में हँसाती और दुःख में रुलाती है। लोग दूसरों की सहायता करना, समाज बनाना, शांन्तिपूर्वक रहना और शान्तिपूर्वक मरना चाहते हैं। इसे ही मानव संस्कृति कहते हैं। हमें इस मौलिक संस्कृति को बढ़ावा देना चाहिए। यह एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के साथ जोड़ने वाली कड़ी है। आत्म-विभाजन की प्रवृत्ति निहित स्वार्थी की सृष्टि है। ऐसे व्यक्ति समाज के दानव हैं। वे सफेदपोश शैतान है और युद्धप्रिय हैं। हमें उनकी गतिविधियों के विरुद्ध लगातार और सन्धि विहीन लड़ाई करनी होगी। भूमा समाज की मजबूती के लिये हमें सामान्य मानवीय तत्त्वों और सामान्य आवश्यकताओं पर आधारित आर्थिक ढांचे की अपेक्षा है। एक मजबूत आर्थिक ढाँचे के लिये प्रथम तत्त्व है।

(1) मानव समाज की निम्नतम आवश्यकताओं की गारण्टी देनी होगी। हमें केवल आवश्यकताओं को ही स्वीकार नहीं करना है बल्कि इन आवश्यकताओं की प्राप्यता की गारण्टी भी करनी है जिसमें व्यक्ति की क्रयशक्ति की गारंटी का सामाजिक दायित्व भी सम्मिलित है। एक सुव्यवस्थित सामाजिक-आर्थिक श्रृंखला के लिये कुछ इतर तत्त्वों की भी अपेक्षा है। वे है -

(2) जीवन का एक सामान्य दर्शन। लोग एक समान आदर्श पर एक होते हैं। जब तक इस विशाल ग्रह के निवासी एक आदर्श को स्वीकार नहीं करते तब तक सामाजिक संश्लेषण का बहुत कम मौका रहता है। इसके अभाव में सदस्यों का झगड़ा अनिवार्य है। इसीलिए जब सामान्य दर्शन अपेक्षित है। सभी स्थूल सूक्ष्म जीवन दर्शनों में केवल एक दर्शन निरपेक्ष है और सभी दर्शन सापेक्ष तत्त्वों पर निर्भर करते हैं। विभिन्न दर्शनों के बीच जितना ही स्थूल दर्शन होगा उतनी ही सामाजिक एकता

दुर्बल होगी। वह व्यक्ति एक सूक्ष्म प्रेरणा पर एक होते हैं तो दर्शन सूक्ष्मतर हो जाता है और समाज अधिक मजबूत हो जाता है। जब यह सूक्ष्मता निरपेक्ष हो जाती है तो यह शाश्वत हो जाती है। निरपेक्ष दर्शन ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित है : यह भौतिक या सापेक्ष दर्शन की सीमा में नहीं आता है। जहाँ तक इस दुनियाँ की शान्ति का सम्बन्ध है हमलोगों के पास ब्रह्मविद्या पर आधारित एक मज़बूत दर्शन होना चाहिए।

(3)संवैधानिक ढाँचे की व्यापकता। कानून विभिन्न देशों के राजा या नेता उनकी स्थानीय परम्परा और भावनाओं पर बनाते थे। अतः कानून पाप-पुण्य की भावना पर आधारित है और अधार्मिक विश्वास का आनुषंगिक है। पाप-पुण्य के व्यावहारिक मूल्य का उपयुक्त मूल्यांकन होना चाहिए और कानून उसी आधार पर बनना चाहिए। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए एक व्यापक कानून का प्रस्ताव होना चाहिये।

मौलिक कानून, नैतिक कानून और मानवीय कानून के बीच अन्तर नहीं होना चाहिये। मौलिक कानून का तात्पर्य है सर्वस्वीकृत कानून। इसका क्षेत्र बढ़ाया जाना चाहिये और पाप-पुण्य की भावना से इसे अलग रखना चाहिये। या हम कह सकते हैं कि पाप-पुण्य की भावनायें उपधार्मिक भावनाओं पर आधारित नहीं हो वरन् सर्वजनीन स्वीकृति पर। हमें पाप पुण्य का निर्णय कल्याणमूलक दृष्टिकोण से करना चाहिये। हमारी यह अन्तहीन प्रक्रिया होगी कि हम इन कानूनों की विभिन्नताओं को कम करते चलें। सम्पूर्ण विश्व के लिये कानून एक होना चाहिये।

(4) सामान्य दण्ड संहिता। दण्ड संहिता भी संवैधानिक ढांचे के आधार पर तैयार की जानी चाहिये। संविधान दण्डसंहिता के लिये मौलिक तत्व होना चाहिये।

आपूर्ति की गारण्टी का विशेष विवेचन अपेक्षित है। बुद्धिजीवियों को प्रोत्साहन देने के लिये उन्हें जीवन की विशेष

सुविधायें देनी पड़ेंगी। एक दिन आयेगा जब लगातार आध्यात्मिक साधना के कारण - इन विशेष सुविधाओं की जरूरत नहीं रहेगी। सबों की निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। प्रत्येक व्यक्ति को वस्त्र, औषधि, मकान, शिक्षा और पोषण के लिये भोजन प्रभृति की जरूरत है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिये। बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक और विशेष कार्य करने वाले लोगों को कुछ सुविधाओं की अपेक्षा होती है। हमें इन दोनों के बीच की खाई को कम करने का अन्तहीन प्रयास करना होगा। कम करने के परिणामस्वरूप यह कभी भी शून्य नहीं होगा। उदाहरणार्थ, वर्त्तमान परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को एक साईकिल की जरूरत है किन्तु नेतृवृन्द और बुद्धिजीवियों को मोटर कार की जरूरत है। हमें इसकी गारण्टी विशेष सुविधा के रूप में देनी पड़ेगी। किन्तु उसके बाद हमें प्रति व्यक्ति एक कार की गारंटी देनी होगी और उस समय यह देखा जायेगा कि नेतृवृन्द और बुद्धिजीवियों को एक हवाई जहाज की अपेक्षा है। इस तरह हम देखते हैं कि निम्नतम आवश्यकता और विशेष सुविधा की खाई कभी समाप्त नहीं

होगी। दोनों के बीच की खाई को पाटने का हमारा अन्तहीन प्रयास होगा।

विश्व के प्रति व्यक्ति की आय कभी भी समान नहीं होगी। यह खाई हमेशा के लिये नहीं पटनेवाली होगी। विचित्रता प्रकृति का धर्म है। अगर वैचित्र्य समाप्त हो जाता है तो दुनियां भी नहीं रहेगी। वैचित्र्य की समाप्ति असम्भव है। किन्तु यह हमारी धर्म साधना का एक अंश है कि हम सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में भेद को कम करें। समाज के आर्थिक ढाँचे में लोगों को सर्वात्मक कल्याण के लिये व्यक्ति की क्रयशक्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण रोल रहता है। बंगाल में शाइस्ता खाँ के समय में दो आना मन चावल बिकता था फिर भी लोख भूखे मरते थे। इसका कारण था लोगों में क्रय शक्ति का अभाव।

(5) स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के क्षेत्र में स्वतन्त्रता होनी चाहिये। किन्तु यह स्वतन्त्रता भौतिक क्षेत्र में जन

हित के विरुद्ध नहीं होनी चाहिये। हमें सामूहिक हित के विरुद्ध जाने का अधिकार नहीं है। भौतिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता को निर्दयतापूर्वक कम रखना पड़ेगा। किन्तु मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता होनी चाहिये, यथा, विचार की स्वतन्त्रता और धर्म साधना की स्वतंत्रता। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के क्षेत्र की सीमा पाप-पुण्य के सिद्धांत पर निश्चित की जानी चाहिये। इसका मौलिक महत्व है। पाप का तात्पर्य है सामूहिक हित के विरुद्ध जाना और पुण्य का तात्पर्य है समाज की सहायता करना और सामूहिक प्रगति को त्वरित करना।

यहाँ व्यास का एक श्लोक प्रमाणिक माना जा सकता है - परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़णम्।

विश्व के प्रति व्यक्ति की आय कभी भी समान नहीं होगी। यह खाई हमेशा के लिये नहीं पटनेवाली होगी। विचित्रता प्रकृति का धर्म है। अगर वैचित्र्य समाप्त हो जाता है तो दुनियां भी नहीं

रहेगी। वैचित्र्य की समाप्ति असम्भव है। किन्तु यह हमारी धर्म साधना का एक अंश है कि हम सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में भेद को कम करें। समाज के आर्थिक ढाँचे में लोगों को सर्वात्मक कल्याण के लिये व्यक्ति की क्रयशक्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण रोल रहता है। बंगाल में शाइस्ता खाँ के समय में दो आना मन चावल बिकता था फिर भी लोख भूखे मरते थे। इसका कारण था लोगों में क्रय शक्ति का अभाव।

(5) स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के क्षेत्र में स्वतन्त्रता होनी चाहिये। किन्तु यह स्वतन्त्रता भौतिक क्षेत्र में जन हित के विरुद्ध नहीं होनी चाहिये। हमें सामूहिक हित के विरुद्ध जाने का अधिकार नहीं है। भौतिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता को निर्दयतापूर्वक कम रखना पड़ेगा। किन्तु मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता होनी चाहिये, यथा, विचार की स्वतन्त्रता और धर्म साधना की स्वतंत्रता। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के क्षेत्र की सीमा पाप-पुण्य के सिद्धांत पर निश्चित की जानी चाहिये। इसका

मौलिक महत्व है। पाप का तात्पर्य है सामूहिक हित के विरुद्ध जाना और पुण्य का तात्पर्य है समाज की सहायता करना और सामूहिक प्रगति को त्वरित करना।

यहाँ व्यास का एक श्लोक प्रमाणिक माना जा सकता है - परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़णम्।

प्राउट की मूल नीति

5/1 वर्णप्रधानता चक्रधारायम् ।।

Varnapradhanata cakradharayam

भावार्थ : आदि काल में सुसम्बद्ध एवं व्यवस्थित समाज नहीं था, उस काल को शूद्र-युग कहा जा सकता है। तब सभी श्रमजीवी थे। इसके बाद साहसी एवं शक्तिशाली सरदारों का युग आया जिसे क्षात्र-युग कहा गया। तत्पश्चात् बुद्धिजीवियों का युग अर्थात् विप्र युग और सबके अन्त में वैश्य-युग-व्यवसायियों का युग आया। वैश्य युग के शोषण के फलस्वरूप विप्र एवं क्षत्रिय जब शूद्रत्व में पर्यवसित होते हैं, तब शूद्र विप्लव के विस्फोट की आशंका प्रति क्षण बढ़ती जाती है। यदि दमन और शोषण का चक्र अबाध चलता रहा, तो भयंकर शूद्र-विप्लव दावाग्नि के समान समाज-कानून को भस्मसात कर प्राचीन मान्यताओं एवं सभ्यता और संस्कृति के अवशेष पर नये समाज की परिकल्पना करता है। लेकिन शूद्रों का न तो कोई दृढ़ निबद्ध समाज है और न उर्वर बुद्धि। फलतः विप्लव के बाद समाज का शासन उनके द्वारा नहीं होता। इस विप्लव में जो उनका नेतृत्व करते हैं, वैश्योत्तर युग में शासन-व्यवस्था उन्हीं के हाथों में आती है। ये वीर और साहसी नेता, द्वितीय बार फिर क्षात्रयुग के आगमन की सूचना देते हैं। शूद्र-युग, क्षत्रिय-युग,

वैश्य युग, विप्र युग तत्पश्चात् विप्लव और उसके बाद फिर वही परिक्रमा चलती रहती है। समाज का यह चक्र इसी तरह घूमता रहता है।

5/2 चक्रकेन्द्रे सदविप्राः चक्रनियन्त्रकाः ।

Cakrakendre sadviprah chakraniyantrakah.

भावार्थ : जो नीतिवादी आध्यात्मिक साधक अपने शक्तिसम्प्रयोग द्वारा पाप का दमन करना चाहते हैं, वे ही सद्वित्र हैं। चक्र की परिधि में इनका स्थान नहीं है, क्योंकि ये चक्र की धुरी या प्राण केन्द्र के रूप में अधिष्ठित रहेंगे। चक्र ठीक ही चलता रहेगा किन्तु यदि क्षत्रिय युग में क्षत्रिय शासक के बदले प्रधानतः शोषक बन जाय, विप्र युग में विप्र और वैश्य युग में वैश्य जन-साधारण का शोषण करने लगे, उस दशा में शक्ति-सम्प्रयोग द्वारा सत् और शोषित जनों की रक्षा तथा असत् और शोषकों का दमन करना इन्हीं सद्वित्रों का धर्म है।

5/3 शक्तिसम्पातेन चक्रगतिवर्धनं क्रान्तिः ।

Shaktisampatena chakragatibardhanamkrantih.

भावार्थ : जहाँ क्षत्रिय शोषक बन जाते हैं वहाँ सद्विप्र क्षत्रियों का दमन कर विप्रयुग का प्रतिष्ठा करेंगे। स्वाभाविक रूप से जिस समय विप्र युग आना चाहिये, उस समय के आगमन की गति को शक्ति सम्प्रयोग द्वारा ये सद्वित्र कुछ त्वरित कर देते हैं। इस तरह का युग परिवर्तन क्रांति (evolution) कहा जायेगा। स्वाभाविक परिवर्तन (Natural change) से क्रान्ति में एक मात्र यही अन्तर है कि इसमें शक्ति सम्प्रयोग द्वारा चक्र की गति बढ़ जाती है।

5/4 तीव्रशक्तिसम्पातेन गतिवर्धनं विप्लवः ।।

Tiivrashaktisampatena gatibardhanam' viplavah;

भावार्थ : अल्पकाल में यदि किसी विशेष युग को हटाकर परवर्ती युग के कठोर बन्धन को ध्वस्त करने के लिये यदि अत्यधिक शक्ति-सम्प्रयोग की आवश्यकता हो, तो ऐसी दशा में तत्संक्रान्त परिवर्तन को विप्लव (revolution) कहा जाता है।

5/5 शक्तिसम्पातेन विपरीतधारायं विक्रान्तिः ।

Shaktisampa'tena vipariitadha'ra'ya'm vikra'ntih.

भावार्थ : शक्ति-सम्प्रयोग द्वारा यदि किसी एक युग को उसके पीछे वाले युग की ओर ले जाया जाय, वैसी दशा में उस परिवर्तन को विक्रान्ति (counter revolution) कहा जाता है। विप्र युग के बाद क्षत्रिय युग की स्थापना को विक्रान्ति कहेंगे। यह विक्रान्ति अत्यन्त अल्प स्थायी होती है, अर्थात् अल्प काल के बाद ही फिर उसके बाद का युग अथवा उस युग के बाद का युग आ जाता है। यदि विप्र युग के बाद हठात् क्षत्रिय युग की

विक्रान्ति हो जाय, वैसी हालत में वह क्षत्रिय युग दीर्घस्थायी नहीं रह सकेगा। अल्पकाल के बाद ही विप्रयुग अथवा स्वाभाविक गतिधारा के अनुसार फिर वैश्य युग आ जाएगा।

5/6 तीव्रशक्तिसम्पातेन विपरीतधारायां प्रतिविप्लवः ।।

Tiivrashaktisampatena vipariitadharayam prativiplavah.

भावार्थ : अत्यन्त अल्प काल में अनुरूप भाव से अथवा अधिक सम्प्रयोग द्वारा यदि किसी युग को पीछे ढकेल दिया जाय, तो उसे प्रतिविप्लव (Counter-revolution) कहेंगे। विक्रान्ति की तुलना में प्रतिविप्लव और भी क्षण स्थायी है।

5/7 पूर्णावर्त्तनेन परिक्रान्तिः

। Purnavartena parikrantih.

भावार्थ : समाज चक्र एक बार पूर्ण रूप से घूम जाने पर अथवा एक बार शूद्र विप्लव होने पर समाज चक्र की परिक्रांति कहेंगे।

5/8 वैचित्र्यं प्राकृतधर्मः समानं न भविष्यति ।।

Vaecitrayamprakrtadharmah samanam na bhavisyati.

भावार्थ : विचित्रता ही प्रकृति का धर्म है। सृष्ट जगत् की कोई भी दो वस्तुएँ तादात्म्य रूप से एक समान नहीं होतीं दो शरीर एक नहीं है, दो मन एक नहीं है, दो अणु या परमाणु भी एक नहीं है। यह विचित्रता ही प्रकृति का स्वभाव है। यदि कोई सब कुछ को समान करना चाहे वैसी दशा में ऐसा करना व्यर्थ होगा, क्योंकि वह प्राकृत धर्म-विरोधी बात है। केवल प्रकृति की अव्यक्त अवस्था में ही सब कुछ समान होते हैं। इसलिये जो

सबको समान करने की ही बात करते हैं, वे सबको ध्वंस करने की बात करते हैं।

5/9 युगस्य सर्वनिम्नप्रयोजनं सर्वेषां विधेयम् ।

Yugasya sarvanimnaprayojanam sarvesam vidheyam.

भावार्थ : हरमे पिता गौरी माता स्वदेशः भुवनत्रयम्। इसीलिये इस विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक सम्पदा प्रत्येक मनुष्य की साधारण सम्पत्ति है, किन्तु विश्व की कोई वस्तु सोलह आना समान नहीं हो सकती। इसलिये मनुष्य की जो निम्नतम आवश्यकता है, उसकी व्यवस्था सबों के लिये करनी होगी अर्थात् अन्न, वस्त्र, चिकित्सा, वासगृह, शिक्षा आदि की व्यवस्था सबके लिये करना आवश्यक कर्त्तव्य है। मनुष्य की ये निम्नतम आवश्यकताएँ प्रत्येक युग में बदलती रहती हैं।

सवारी गाड़ी की दृष्टि से किसी युग में मनुष्य की निम्नतम आवश्यकता एक साइकिल हो सकती है और किसी युग में वायुयान भी हो सकता है। जिस युग में मनुष्य की जो निम्नतम आवश्यकता होगी, उसकी व्यवस्था अवश्य ही करनी होगी।

5/10 अतिरिक्तं प्रदात्व्यं गुणानुपातेन । Atirikam pradatavyam gunanupatena.

भावार्थ : युग की निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो अतिरिक्त सम्पदा बची रहेगी उसे विशेष गुण सम्पन्न व्यक्तियों के बीच गुण के अनुपात के अनुसार बाँट देना होगा। जिस युग में एक साधारण मनुष्य की आवश्यकता एक साइकिल है, उस युग में एक चिकित्सक की आवश्यकता एक मोटर गाड़ी है। गुण के आदर के लिये तथा गुणी को समाज सेवा का अधिकतर सुअवसर देने के लिये उसे मोटरगाड़ी देनी होगी।

Serve according to your capacity and earn according to your necessity - यह बात सुनने में अच्छी तो लगती है किन्तु धरती की कड़ी मिट्टी में इससे फसल नहीं मिलेगी।

5/11 सर्वनिम्नमानवर्धनं समाजजीवलक्षणम् ।

Sarvanimnamanavardhanam samjajiivalaksanam.

भावार्थ : साधारण मनुष्य की निम्नतम आवश्यकता का जो स्थिरीकृत मान (accepted standard) है, गुणियों को उससे कुछ अधिक अवश्य ही मिलेगा, किन्तु इस निम्नतम मान (standard) को ऊपर उठाने की भी अन्तहीन चेष्टा करनी होगी। जब जन-साधारण की आवश्यकता एक साइकिल की होगी और गुणियों की मोटर गाड़ी की, हमें तब चेष्टा करनी होगी जिससे कि जन-साधारण को भी एक मोटर गाड़ी मिले। प्रत्येक व्यक्ति को एक मोटरगाड़ी देने के बाद सम्भव है कि देखा जाय कि गुणी

जनों के लिये एक वायुयान की आवश्यकता है। गुणीजनों को एक वायुयान देने के बाद निम्नतम मान को ऊपर उठाकर जनसाधारण को भी एक वायुयान देने की चेष्टा करनी होगी। इस तरह निम्नतम मान को भी उठाने की अशेष चेष्टा करनी होगी एवं इसी चेष्टा के ऊपर मनुष्य की जागतिक ऋद्धि निर्भर करेगी।

5/12 समाजादेशेन विना धनसंचयः अकर्तव्यः ।

Samajadeshena vina dhanasaincayah akartavyah.

भावार्थ : यह विश्व ब्रह्माण्ड सबों की यौथ सम्पत्ति है। इसे भोग करने का अधिकार सभी को है। किन्तु अपव्यय करने का अधिकार किसी को नहीं है। यदि कोई व्यक्ति अतिरिक्त सम्पदा आहरण एवं संचय करता है, इस दशा में वह प्रत्यक्ष रूप से समाज के अन्य व्यक्तियों की सुख-सुविधा को ही खर्च करता है। उसका आचरण प्रत्यक्ष रूप से ही समाज-विरोधी है। इसलिये

समाज की अनुमति के सिवा किसी भी व्यक्ति को सम्पद संचय करने का मौका देना उचित नहीं है।

5/13 स्थूलसूक्ष्मकारणेषु चरमोपयोगः प्रकर्तव्यः
विचार समर्थितं वण्टनंच ।

Sthulasuksmakaranesu caramopayogah prakartavyah Vicarasamarthitam vantanainca.

भावार्थ : स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत में जो कुछ भी सम्पदं निहित है जीवों के कल्याण के लिये उनका उत्कर्ष साधन करना है। क्षिति, अप, तेज मरुत व्योम इन पंच तत्वों के अन्दर जहाँ भी जो कुछ छिपी हुई सम्पदाएँ हैं, उनका उत्कर्ष सोलहो आना उनके सद्व्यवहार की प्रचेष्टा द्वारा ही संभव है, जल, स्थल अन्तरिक्ष उलट-पुलट करके मनुष्य को अपनी-अपनी आवश्यकताओं के उपादानों को खोज-खोज कर ढूँढ़ लेना होगा- बना लेना होगा। मनुष्य द्वारा आहृत संपदाओं को

विचारपूर्वक मनुष्य मात्र में बांट देना होगा, अर्थात् सबों की निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति करनी ही है। फिर भी गुणी और विशेष दशा में विशिष्ट व्यक्ति के प्रयोजन को भी ध्यान में रखना होगा।

5/14 व्यष्टिसमष्टि शारीरमानसाध्यात्मिक सम्भावनायां चरमोऽपयोग्श्च ।

Vyastismastishariira-manasadhyatmika sambhavanayam caramopayogashca.

भावार्थ : समष्टि देह का, समष्टि मानस का तथा समष्टिगत आत्मा का विकास करना होगा। समष्टि का कल्याण व्यष्टि में और व्यष्टि का कल्याण समष्टि में है। इस बात को भूलने से काम नहीं चलेगा। उपयुक्त खाद्य, प्रकाश हवा, वास-गृह एवं चिकित्सा द्वारा व्यष्टि देह के खाद्यान्न की व्यवस्था नहीं कर

सकने से समष्टि देह का कल्याण हो नहीं सकता है। इसीलिए समष्टि देह की कल्याण कामना के लिये प्रेरित होकर ही व्यष्टि-कल्याण करना होगा। प्रत्येक व्यष्टि में उपयुक्त समाज-बोध, सेवा-बोध तथा ज्ञान जगाने की चेष्टा नहीं करने से समष्टि का भी मानसिक विकास नहीं हो सकता है। इसीलिए समष्टि-मानस के कल्याण की भावना से उद्बुद्ध होकर व्यष्टि मानस का कल्याण करना होगा। व्यष्टि में आध्यात्मिकता तथा आध्यात्मिकता-केन्द्रित नैतिकता नहीं रहने से समष्टि का मेरुदण्ड टूट जाएगा। इसीलिए समष्टि के कल्याण के लिये ही व्यष्टि-व्यष्टि में आध्यात्मिकता की ज्योति जगानी होगी। गिनती में केवल चार-पाँच शक्तिशाली व्यक्तियों से, चार-पाँच पण्डित या बुद्धिमानों से अथवा चार-पाँच आध्यात्मिक साधकों के रहने से समग्र समाज की प्रगति सूचित नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर मन और आत्मा में अनन्त विकास की सम्भावनायें हैं। उन सम्भावनाओं को कार्य में लगाना ही होगा।

5/15 स्थूलसूक्ष्मकारणोऽपयोगाः सुसन्तुलिताः विधेयाः ।

Sthulasukasmakaranopayogah
susantulitahvidheyah

भावार्थ : व्यष्टि और समष्टि देह की कल्याण-संसाधना के लिये इस तरह काम करना होगा जिससे शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक और स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण इन तीनों में एक सुसामंजस्य रहे। प्रत्येक मनुष्य की निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने का दायित्व समाज का है, किन्तु समाज यदि इस दायित्व की प्रेरणा से प्रेरित हो प्रत्येक घर में अन्न भेजने की व्यवस्था कर देता है, प्रत्येक के लिए गृह-निर्माण कर देता है, वैसी हालत में व्यष्टि की कर्म चेष्टा ढीली पड़ जाएगी- वह क्रमशः सुस्त पड़ जाएगा, काहिल हो जायेगा। इसलिए निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय जिस परिमाण में अर्थ की आवश्यकता होगी उसे अपने सामर्थ्य के अनुसार परिश्रम-

विनिमय के द्वारा मनुष्य उपार्जन कर सके, वैसी ही व्यवस्था समाज को करनी होगी और जहाँ मनुष्य के सर्व निम्न प्रयोजन का मनोनयन करता है, वहाँ उस मनुष्य की क्रय क्षमता को बढ़ा देना ही उनके लिये प्रकृष्ट उपाय है।

सामंजस्य-विधान कहने से यह भी समझा जाता है कि जो मनुष्य शरीर, मन और आत्मा तीनों से उन्नत है उनसे सेवा लेने के वक्त समाज एक सामंजस्य पूर्ण नीति मान कर चलेगा। जिनकी शारीरिक बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक कोई एक ही शक्ति प्रकट है, समाज उनसे उसी प्रकार की सेवा लेगा। जिसकी शारीरिक और बौद्धिक दोनों शक्तियाँ ही यथेष्ट हैं, समाज उनसे अधिक परिमाण में बौद्धिक और अल्प परिणाम में शारीरिक सेवा लेने की एक सामंजस्यपूर्ण नीति मानकर चलेगा, क्योंकि बौद्धिक शक्ति अपेक्षाकृत सूक्ष्म और दुष्प्राप्य होती है। जिसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों ही शक्तियाँ मौजूद हैं, समाज उनसे अधिक परिमाण में आध्यात्मिक, अल्प परिमाण

में बौद्धिक और अत्यल्प परिमाण में शारीरिक सेवा लेगा। समाज कल्याण में सबसे अधिक सेवा वे ही कर सकते हैं, जिन्हें आध्यात्मिक शक्ति है। उसके बाद जिन्हें बौद्धिक शक्ति है वे अधिक सेवा कर सकते हैं। जिन्हें शारीरिक शक्ति है, वे यद्यपि तुच्छ नहीं है तथापि वे स्वयं कुछ कर नहीं सकते। वे जो कुछ करते हैं, उसे आध्यात्मिक, बौद्धिक-शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों के निर्देशानुसार ही करते हैं। इसलिये समाज नियन्त्रण का भार शारीरिक शक्ति-प्रधान व्यक्तियों के हाथ में रहना उचित नहीं है, साहस प्रधान व्यक्तियों के हाथ में भी रहना उचित नहीं है, बुद्धि-प्रधान व्यक्तियों के हाथों में रखना उचित नहीं है, विषय-बुद्धि-प्रधान व्यक्तियों के हाथों में भी रखना उचित नहीं है, रखना उचित है उनके हाथों में जो एक ही आधार में आध्यात्मिक, साधक, बुद्धिमान एवं साहसी हैं।

5/16 देशकालपात्रैः उपयोगाः परिवर्त्तन्ते ते उपयोगाः प्रगतिशीलाः भवेयुः

Deshakalapatraeh upayogah parivarttantete upayogah pragatishillah bhaveyuh.

भावार्थ : किसी वस्तु का क्या यथार्थ व्यवहार है वह देश, काल, पात्रानुसार परिवर्तित होता रहता है। जो यह सहज नीति नहीं समझ सकते हैं वे लकीर के फकीर की तरह पुरातन कंकाल को ही जकड़ कर रखना चाहते हैं। इसीलिये वे समाज में खारिज हो जाते हैं। क्षुद्र नेशन-बोध, अंचल बोध कुल गरिमा इत्यादि वृत्तियाँ मनुष्य को इस मूल तत्त्व से दूर हटाकर रखना चाहती है। इसीलिये वे सहज तत्त्व को अकपट भाव से स्वीकार नहीं कर सकते। फलस्वरूप अपने देश तथा जनता को अवर्णनीय क्षति कर यवनिका के अन्तराल में डूब जाने के लिये बाध्य होते हैं।

देश-काल-पात्रानुसार सारी वस्तुओं के व्यवहार में परिवर्तन आयेगा, इसको मानना ही होगा और इसको जानकर प्रत्येक विषय तथा भाव (Idea) के व्यवहार में प्रगतिशील होना होगा। एक शक्तिशाली व्यक्ति जो शक्ति लेकर आज बहुत बड़ी हथौड़ी चल रहा है, वैज्ञानिक गवेषणा द्वारा उसकी इस शक्ति को केवल एक हथौड़ी चलाने के काम में न लगाकर एक साथ एकाधिक हथौड़ी चलाने के काम में लगाना होगा, अर्थात् वैज्ञानिक गवेषणा में प्रगतिशीलता का भाव लेकर मनुष्य की शक्ति से क्रमशः अधिक से अधिकतर सेवा ले लेनी होगी। उन्नत प्रकार के यन्त्र आदि तथा प्रगतिशील भावधारा में सृष्ट विभिन्न उपादानों और उपकरणों के व्यवहार के फलस्वरूप समाज में छोटी-बड़ी विभिन्न प्रकार की जो असुविधाएँ दिखाई दे सकती हैं या दिखाई देंगी, उन सारी असुविधाओं का सामना साहस के साथ करना होगा और संग्राम द्वारा अपने को उपयुक्त कर जीवन की सार्वभौम चरितार्थता के पथ पर अग्रसर होना होगा।

प्रगतिशीलउपयोगतत्त्वमिदं सर्वजनहितार्थ सर्वजन, सुखार्थ प्रचारितम् ।

आषाढ़ी पूर्णिमा 1968 बंगाब्द।

देशभक्तों के प्रति

इस नाम से एक अलग पुस्तक है, इसलिए यह लेख यहां शामिल नहीं है।

यह पुस्तक आपको निम्नलिखित वेबसाईट पर मिलेगी

www.anandamargaideas.com

सूचीपत्र

समाज का गति तत्त्व

देश काल पात्र आदि आपेक्षिक तत्त्वों का अस्तित्व जिस बोधि-भूमि में सिद्ध होता है उस बोधिभाव की अक्रियाशील अवस्था में ही वस्तु की परमास्थिति होती है। सापेक्ष चलायमान भाव वस्तु की गति और निरपेक्ष चलायमान भाव अगति है। सापेक्ष चलायमनता का (जब जिस मात्रा में) कालिक सत्ता से सामंजस्य टूट जाने की स्थिति विरति की स्थिति है। द्रष्टासत्ता की कर्मभावयुक्त चलायमानता ही मात्रा भेद से वर्द्धमान अथवा ह्रस्वमान गति कही जा सकती है।

गति या स्थिति की नित्यता विज्ञान और दर्शन दोनों के लिए जटिल प्रश्न है। वस्तुतः जिस युक्ति से गति में आपेक्षिकता का अभाव कहा जाता है। उसी युक्ति से स्थिति में आपेक्षिकता का अपवाद आ जाता है। अतः पारमार्थिक दृष्टि से गति को

अस्वीकार करने से स्थिति को भी अस्वीकार करना होगा। दृश्यमान वस्तुएँ जब आपेक्षिक दृष्टि से स्थान परिवर्तन करती मालूम नहीं होती है, उसी को स्थिति कहा जाता है। किन्तु उस अवस्था में जो दृश्य-द्रष्टा भाव वृहद भूमि में चलता रहता है उसे हम लोग स्थूल या सूक्ष्म मन से समझ नहीं सकते। इसलिए इस प्रकार की तथाकथित स्थिति को परमास्थिति नहीं कहा जा सकता। व्यष्टि जीवन में परमास्थिति तब कही जायेगी जब कारण मन भी क्रियाशील न रहे इसी हेतु जीव की विदेही या विमानस अवस्था भी परमास्थिति नहीं है क्योंकि उस अवस्था में उसकी क्रियाशीलता का बीज सृष्टि शक्ति की सहायता से भूमा के मानस एवं देह संस्थान में क्रियाशील रहने को बाध्य है। इस प्रकार हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि मन की क्रियाशीलता के बीज का दग्ध होना ही परमास्थिति है।

चितिशक्ति प्राकृत शक्ति में विन्यस्त होकर चित्ताणु में रूपान्तरित होती है और चित्ताणु भू चक्र में रूपान्तरित होता

चलता है। अतः इस चित्ताणु समूह के सम्भरक का साक्षित्व निश्चय ही चितिशक्ति में है। इसी साक्षित्व में चित्ताणु सृष्ट आदिभूत समूह अस्तित्व की स्वीकृति पाता है। किन्तु चित्ताणुओं की गति सम्यक स्वीकृति नहीं पाती। सर्वसम्भरक सत्ता, ओत अनुज्ञाता और अनुज्ञा योग से कहीं तो उसकी गति की साक्षी होती है कहीं नहीं। और जहाँ गति का साक्षित्व है वहाँ स्वयं लिप्त नहीं रहने के कारण गति का बढ़ना और घटना दीख नहीं पड़ता है क्योंकि अपने अतिरिक्त किसी दूसरी सत्ता के अभाव में चित्ताणुओं की आभ्यन्तरीन गति अनुभूत होने पर भी अन्य सापेक्षता ठीक रूप से जग नहीं पाती अतः उसके इस गति बोध को गति न कहकर अगति कहना ही अधिक उपयुक्त है।

जब व्यष्टि चेतना अपने तई (अन्यसापेक्ष तो होगा ही) वस्तुओं का स्थान परिवर्तन लक्ष्य करती है तभी यथार्थ मे उतनी अवस्था ही गति कही जायगी। स्वसापेक्ष चलायमानता (निश्चय ही अन्य सापेक्ष भी) जब प्रयास छोड़ देती है अथवा प्रयास कर

सकने की सामर्थ्य छोड़कर अगति भाव में आत्मसमर्पण कर देती है उस अवस्था का ही नाम विरति है। अपर दृष्टि से जगत की सब तरह की गति विरति से संपृक्त है और इसीलिये सब कर्मों में संकोचात्मिक भाव अगतिभाव में स्थिति लाभ का प्रयास है। अगतिभाव में सामयिक स्थिति की विरति है और अगति के भाव से गति की प्रेरणा पाकर ही कर्म का पूर्ण विकास सम्पन्न होता है। अगति भाव की प्रेरणा के बिना कर्म सिद्धि असम्भव है इसीलिए कर्ममात्र (मोटे तौर पर इसी को गति कहते हैं) संकोचविकासात्मक होगा ही। इसी युक्ति से लौकिक जगत में भी बाधारहित विकास या आधारहित संकोच असम्भव है। कर्म या गति में विकास भाव ही देश, पात्र एवं काल भाव के साथ प्रत्यक्ष रूप से संयुक्त रहता है। इसके संकोच का प्रयास कालिक भाव से हट जाने की चेष्टा है और क्योंकि संकोच अवस्था की अगति में ही स्थिति है अतः उस अवस्था में व्यष्टि सत्ता को काल का बोध नहीं रहता।

क्या विकास भी एक अवस्था है? वस्तुतः विरति काल में अगति भाव से प्राप्त प्रेरणा ही विकास का कारण है। इस प्रकार प्रेरणा पाकर विकास क्रमशः बढ़ता हुआ अग्रसर होता है और इस प्रकार आगे और आगे चले चलने की चरम अवस्था में भी एक प्रकार की विरति आती है। यद्यपि यह विरति भी अगति में ही स्थित है किन्तु इस अवस्था में कालिक भाव की अति प्रकटता के कारण वह अगति भाव से कोई प्रेरणा नहीं ले पाती। विकासोन्मुख गति का झोंक ही पर परवर्ती भाग में अर्थात् स्तर के अपरार्द्ध में संकोचमुखी गति में बदल जाता है। यह संकोचमुखी गति क्रमशः हास्य होती जाती है अन्त में अगति में आत्मसमर्पण कर देती है। आधार या सत्ता संकोचात्मक अगति भाव से ही प्रेरणा संग्रह करके विकासात्मक अगति की ओर आगे बढ़ाता है यही नियम है। कालिक सत्ता प्रकट न रहे तो यह प्रेरणा आहृत हो सकती है पर पात्र सत्ता की अप्रकटता या त्रुटि की अवस्था में प्रेरणा ग्रहण नहीं हो सकती। पात्र सत्ता की इस प्रकार की अप्रकटता संरचनात्मक त्रुटि को ही मृत्यु कहते हैं।

संकोच विकासात्मक गति की तुलना कुछ कुछ एक पर एक सजाए पर्वत पर चढ़ने से की जा सकती है। समतल से प्राणशक्ति लेकर चोटी की ओर बढ़ने जैसा ही। यह यात्रा विकासात्मक अगति की ओर की यात्रा है। शिखर पर आरूढ़ होना ही विकासात्मक अगति है और इस अवस्था के बाद उतरने के झोंक में पर्वत के नीचे की ओर लुढ़क पढ़ना ही संकोचात्मक अगति की ओर जाना है। फिर नई प्राण शक्ति लेकर दूसरी बार शिखर की ओर चढ़ना विकासात्मक अगति की ओर यात्रा है। किन्तु अगति धारा के साथ इस तुलना मे एक व्यतिरेक है। पर्वत आरोहण के समय शिखर मे जितना निकट जाते है वेग उतना घटता है और गति धारा के मूल तत्व में ऐसी अवस्था में वेग में वृद्धि होगी। पहले पर्वत के शिखर की दूसरी ओर लुढ़क जाने पर यदि किसी का शरीर चूर-चूर हो जाय तो समतल भूमि में पहुँच कर फिर पर्वत पर चढ़ने की प्रेरणा वह संग्रह नहीं कर पायेगा। यह उसकी संरचनागत त्रुटि हुई अर्थात् उसकी मृत्यु।

गतिधारा के साथ मनुष्य की श्वास प्रश्न्नास क्रिया की तुलना अत्यन्त संगत होगी। श्वास लेना (पूरक) विकासात्मक अगति की ओर जाना है, पूरक के बाद कुम्भक (पूर्ण कुम्भक) विकासात्मक अगति है। उसके बाद छोड़ना (रेचक) संकोचात्मक अगति की ओर जाना है एवं रेचक कुम्भक (शून्य कुम्भक) संकोचात्मक अगति है। पूरकान्त कुम्भक में काल की प्रकटता है, चलमानता है, किन्तु गति बोध नहीं है। किन्तु रेचकान्त कुम्भक में काल की प्रक्कटता नहीं है पर वहमानता है, फिर गति बोध नहीं। एक पूरक से दूसरे पूरक की पूर्वावस्था तक के श्वास प्रश्वास की क्रिया का आधा क्षेप निष्पन्न होता है। प्रत्येक आधे खेप के बाद अर्थात् प्रत्येक रेचकान्त कुम्भक में जीव की मृत्यु होती है। फिर उसी मृत्यु या अगति की अवस्था से दूसरी बार प्राण शक्ति लेकर परवर्ती पूरक काल में जीवित हो उठता है। दो अर्धक्षेप श्वास प्रश्वास क्रिया अर्थात् एक पूर्णक्षेप श्वास क्रिया के बाद यह दीख पड़े कि देहयन्त्र अगति भाव से प्राणशक्ति आहरण करने में असमर्थ है तो पूरक क्रिया उसके लिये सम्भव नहीं होती। इसी अवस्था को लौकिक भाषा में मरण

कहते हैं। पर असल में प्रत्येक रेचक क्रिया के फलस्वरूप जीव का मरण होता चलता है। दिन भर में कई हजार बार इस प्रकार की मृत्यु होती है। शास्त्र में इस प्रकार मरण को जीव भाव का खण्ड मलय कहा गया है। पूरकान्त कुम्भक में कांल की प्रकटता तथा बीज रूप से वायु के निर्गमन की सम्भावना रहने के कारण इस अवस्था को मरण नहीं कहा जा सकता। योग शास्त्र में विभिन्न प्रकार के रेचकान्त पूरकान्त प्राणायामों के द्वारा पांचभौतिक तत्त्व समूह से अधिक परिमाण में प्राण शक्ति आहरण की व्यवस्था दी हुई है।

व्यष्टि मन की तरंग जब वृहत मन की तरंग से पीछे या उल्टी दिशा में चलती है तब इस अवस्था को व्यष्टि की अधोगति कहते हैं। व्यष्टि मानस की तरंग जब वृहत् मानस की तरंग के साथ समताल में चलती है तब उसे व्यक्ति की स्वाभाविक गति कहते हैं और व्यष्टि मानस की तरंग जब वृहत्

मानस की तरंग से भी द्रुत गति में चलती है तब उसे व्यष्टि की अगति कहते हैं।

व्यक्त जगत् की आपेक्षिकता की भीड़ में किसी को भी स्थितिशील नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा होता तो सभी कुछ एक रसात्मक हो जाता और तब सब सब नहीं रह जाता। अतः व्यक्त जगत् का अस्तित्व गतिधारा की आपेक्षिकता में ही सिद्ध होता है गतिधारा की पारमार्थिकता या अगति में नहीं।

अनेक व्यक्तियों को मिलाकर ही समाज गठित होता है। इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने संस्कारों की गतिधारा में चलना चाह कर भी पूरा-पूरा अपनी-अपनी तरह से नहीं चल सकता। सूक्ष्म तथा कारण भाव में व्यष्टि वैशिष्ट्य लेकर चलना सम्भव होने पर भी स्थूल जागतिक क्षेत्र में सम्भव नहीं है। अनेक गतिधाराओं के समन्वय से जिस सामाजिक गतिधारा की सृष्टि होती है उससे इस अनेक में से प्रत्येक गौण रूप से प्रभावित

रहता है और न्यूनाधिक रूप से समाज की सामग्रिक गतिधारा के क्षेत्र में या कम से कम जागतिक क्षेत्र में ताल मिलाकर या मान कर चलना चाहता है। जड़-संघात के कारण अजैव व्यष्टि जैव व्यष्टि में परिणत होता है, किन्तु इस अजैव व्यष्टि का तदन्तर विकास जिस जड़-संघात तथा भाव संघात के परिणाम स्वरूप घटित होता है वह परोक्ष भाव से प्राकृतिक सूत्र से आने पर भी प्रत्यक्ष रूप में सामाजिक गतिधारा के संकोचात्मक भाव की अगति से ही अर्जित होता है।

अनेक गतिधाराओं की परिणाम भूत गतिधारा को सामाजिक गति धारा कह सकते हैं। उसकी तरंगों का अधिरोहण अवरोहण व्यष्टि तरंग के अधिरोहण और अवरोहण से कुछ छोटी होती है। उसकी यही ह्रस्वता क्रांति या विप्लब का मार्ग प्रशस्त करती है।

विकासात्मक गति पूर्व संकोच भाव की अगति से प्राणशक्ति आहरण करती है। इस प्राण शक्ति की मृदुता या अतिवृता अगति भाव की दीर्घता तथा संरचना की शक्ति संवहन करने की सामर्थ्य के ऊपर निर्भर करती है। अगति भाव की दीर्घता तभी मरण कही जाती है जब पुरातन संरचना अगति भाव की प्राण शक्ति को धारण नहीं कर पाती। ऐसी अवस्था में अगति भाव की विकासात्मक स्फूर्ति के लिये नवतर संरचना की आवश्यकता होती है। यह नई संरचना पुराने का नया रूप हो सकती है या सम्पूर्ण रूप से भिन्न किसी संरचना का नवतर रूप हो सकती है। निश्चय ही संकोच के बाद जहाँ नये विकास का उपयोग होता है, वहाँ संरचना में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आता है, किन्तु वह संरचना तभी नई कही जाती है जब उसके पहले रूप और बाद के रूप में व्यष्टि मन या समाज-मन की प्रत्यभिज्ञा काम नहीं कर पाती है। विरति काल में एक संरचना की मृत्यु (साधारणतः लौकिक अर्थ में जिसे मरण कहते हैं) होती है, विरति की पूर्वावस्था में दूसरी संरचना के द्वारा उसके अवदमन या उसकी प्राण शक्ति ग्रास कर लेने के कारण। इस

तरह की लौकिक मृत्यु केवल व्यष्टि की ही नहीं होती समाज की भी होती हैं। इस तरह कोई विशेष व्यष्टि या समाज का जो व्यष्टि या समाज ग्रास करता है या अवदमित करता है तो इस क्रिया के परिणाम स्वरूप आपात दृष्टि से उसकी प्राण शक्ति कुछ बढ़ती ही है, परन्तु अपनी देह में तरंगों की विभिन्नमुखीनता और उसके परिणाम-भूत संघर्ष के कारण उसकी परिणाम भूत तरंग छोटी हो जाती है और इसके फलस्वरूप उसके संरचनागत मरण की संभावना बढ़ जाती है। अवश्य, यदि इस प्रकार की ग्रास क्रिया में तरंगों का समीकरण हो तो व्यष्टि या समाज की संरचनागत प्राण शक्ति बढ़ ही जायगी।

प्राचीन मिस्त्र की सभ्यता की बात ली जाय। आज हमारी दृष्टि में उसका सभी कुछ अच्छा लगे या न लगे, वह एक विशेष प्रकार की स्वकीयता का दावा निश्चय ही कर सकती थी। किन्तु उसके भीतर अनेक प्रकार की तरंगों का संघात था जिसके फलस्वरूप समष्टि देह तरंग अत्यन्त दुर्बल थी। इसलिये उसे

पश्चिमी एशिया और दक्षिण-पूर्वी यूरोप (जिनकी सामूहिक तरंग सबल थी) की विभिन्न सामाजिक गोष्टियों के दबाज के कारण ध्वंस होना पड़ा था। किन्तु मिस्र की सभ्यत के विनाश को विशुद्ध वित्तार से उस समय तक विनाश नहीं कहा जा सका। कारण अपेक्षाकृत अल्प संवेदनशील (यद्यपि अधिक प्राणशक्ति सम्पन्न) जाति-दलों के द्वारा मिस्त्र की सभ्यता की प्राणशक्ति तथा सामाजिक ढाँचे को नष्ट कर देने के बावजूद भी वे उसकी चिन्ता धारा से प्रभावित थे। मिस्त्र की सभ्यता को इस्लामी आदर्श से अभिभूत अरब समाज से जबर्दस्त धक्का लगा था। इस नई अरबी विचारधारा के प्रभाव से प्राचीन मिस्त्र से नवीन मिस्त्र भावनात्मक रूप से पूर्णरूपेण विच्छिन्न हो गया। इसीलिये वर्त्तमान मिस्र की भावधारा में उसके प्राचीन विचारों का कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह गया है।

अरबी सभ्यता मात्र जीवनी शक्ति से भरपूर ही नहीं थी उसकी भावधारा में अपनी विशेषता भी थी। अरबी आक्रमण के

काल में मिस्त्र की पारस्परिक प्राण शक्ति के नष्ट हो गये रहने पर भी उसकी स्वाभाविक विचारधारा वर्तमान थी। तब भी जो संवेदनशीलता रह गई थी, वह नवीन अरबी विचारधारा के बिलकुल विपरीत थी। उस विपरीत धर्मी मिस्त्र-विचारधारा के उसके (अरब) ग्रास करने के फलस्वरूप अरबी चिन्ताधारा दुर्बल पड़ गई। परिणामतः यूरोप को ग्रास करना उसके लिए असंभव हो गया। आईवेरियन मूरों के पीछे हटने का यह भी एक मुख्य कारण था।

प्रश्न उठ सकता है कि प्राचीन अरबी एवं इस्लामपंथी अरबी दोनों की चिन्ता धाराएं अलग-अलग थी, फिर भी पूर्ववर्ती विचारधारा ने परवर्ती विचारधारा की प्राणशक्ति को नष्ट क्यों नहीं किया? वस्तुतः प्राचीन अरबी विचारधारा की अनेक चीजें इस्लामपंथी अरबी विचारधारा में समाविष्ट की गई थी और दोनों के बीच जहाँ असंगतियाँ थी, वहाँ भयानक युद्ध का भी अस्तित्व था। एक संगठित आदर्श एक आध्यात्मिक चेतना ने

इस्लामपंथी मनोभाव को प्राचीनपंथी अरबी मनोभाव पर हावी होने में विपुल सहायता की थी।

पश्चिम में मिस्र देश में इस्लामपंथी अरबी विचारधारा को जिस तरह के संकट का सामना करना पड़ा था पूरब से पर्शियन देश में भी हू-बहू वही हुआ था। अपनी विशिष्टता से युक्त पर्शिया समाज ने इस्लामी भावधारा की मात्र छाप को ही ग्रहण किया था परन्तु सामाजिक देह के भीतर फल्गु नदी की धारा की तरह (जो रेत के भीतर प्रवाहित होती है) पारसी भावधारा दीर्घ काल तक प्रवाहित हो चली थी और आज भी उसकी क्षीण धारा प्रवहमान है। पारसी सीमा के उल्लंघन करने के पश्चात् इस्लामपंथी अरबी आदर्श किंचित शक्तिहीन भी हो गया था और सिन्धु नदी पार कर भारत में आने पर भारतीय समाज का आत्मसात कर पाना उसके लिये असम्भव हो गया। अवश्य ही भारतीय समाज को आत्मसात कर सकने की उसकी असमर्थता का यह एक गौण कारण था। मुख्य कारण था भारत का

आध्यात्मिक तथा सामाजिक आदर्श और भारतवासियों की विचारशील मानसिकता। मूर्ति-पूजा पर आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था से भारतीय सामाजिक गठन में दरार पड़ जाने पर भी एक महान् नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक आदर्श ने जनजीवन में जो शक्तिशाली तरंग तैयार किया था, पारस का अतिक्रमण कर आये हुए परिवर्तित आदर्शों के लिये उसका आत्मसात संभव नहीं हुआ। यहाँ तक कि विवर्तित इस्लामी आदर्श एवं भारतीय सामाजिक आदर्श शताब्दियों तक एक दूसरे के करीब रहे परन्तु तरंगगत विषमता के कारण दोनों में परस्पर लेन-देन बहुत कम हुआ। भारतीय समाज के बाहरी रूप पर इस्लामी समाज का प्रभाव अवश्य ही पड़ा है किन्तु कहा जा सकता है कि मानसिकता अथवा आध्यात्मिकता पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा है। भारतीय समाज में विशेष कर भारत के वैष्णव धर्म में जो सूफी प्रभाव दिखाई पड़ता है, वह वास्तव में फारसी प्रभाव है, इस्लामी प्रभाव नहीं। इस सूफी प्रभाव का तरंग-मूलक रूप भारतीय समाज तरंग के साथ अच्छा ताल-मेल रखता है

और इसलिये इसका प्रभाव शताब्दियों तक भारत के सामाजिक जीवन को प्राणशक्ति प्रदान करता रहा।'

मानव समाज भाग-2

समाप्त

**********X**********

घोषणा

प्रउत (प्रगतिशील उपयोग तत्व) एक नया आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांत है, जिसे आनंद मार्ग प्रचारक संघ के धर्मगुरु श्री प्रभात रंजन सरकार उर्फ़ श्री श्री आनंदमूर्ति जी ने प्रतिपादित किया है। धर्मगुरु के रूप में वे मानव इतिहास में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए एक सिद्धांत दिया। उनके विचार

'प्रउत' पुस्तकों में अभिव्यक्त हैं। उन्होंने न केवल विचार दिए, बल्कि यह भी भविष्यवाणी की, कि एक दिन अवश्य आएगा जब इस पृथ्वी ग्रह के लोग इसे पूरे मन से स्वीकार करेंगे।

विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और अन्य समस्याओं का न्यायोचित समाधान खोजने के उद्देश्य से प्रउत पढ़ें और दूसरों को भी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें।

मानव-निर्मित समस्याओं के कारण विश्व आज विनाश के कगार पर है। प्रउत की नीतियों को लागू करके ही समाज की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

प्रउत की नीतियों को लागू किए बिना इस विश्व को किसी भी तरह विनाश से नहीं बचाया जा सकता।

"प्रउत" को " प्राउट" भी कहते हैं, जो अंग्रेज़ी Progressive Utilisation Theory का संक्षेप PROUT है।

आप नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करके ऐसी कई पुस्तकें पा सकते हैं।

www.anandamargaideas.com

यदि आपके कोई प्रश्न हों, तो आप पूछ सकते हैं।

आचार्य सत्यबोधानंद अवधूत

व्हाट्सएप नंबर: 8972566147

अक्टूबर 2025

सूचीपत्र